परिप्रेक्ष्य

शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक–आर्थिक संदर्भ

वर्ष 25 अंक 3 दिसंबर 2018

प्रमुख आलेख

विनय कुमार कंठ
जन सांस्कृतिक आन्दोलन : वैचारिक, सांस्कृतिक एवं रचनात्मक चुनौतियाँ

मनीषा प्रियम
वैश्वीकरण के युग में शैक्षिक सुधार : परिचर्चा क्या शिक्षक विहीन रहेगी?

सुभाष चन्द्र बसु, अंजलि पुरी एवं **शरत चंद्र बसु**
डिस्लेक्सिक बच्चों के पठन-लेखन की समस्याएं : ध्वनि की पहचान एवं सही क्रम बताने का अभ्यास

ऋतु बाला
शैक्षिक दस्तावेज़ों में परीक्षा का स्वरूप

लाजवंती एवं **सोहिल कुमार बंसल**
स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में सहसंबंध

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन संस्थान
NATIONAL INSTITUTE OF EDUCATIONAL PLANNING AND ADMINISTRATION

परिप्रेक्ष्य

शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक-आर्थिक संदर्भ

संरक्षक

एन.वी. वर्गीज

कुलपति, नीपा

संपादकीय सलाहकार मंडल

साधना सक्सेना

श्रुति तांबे

अपूर्वानंद

सतीश देशपांडे

संपादक मंडल

कुमार सुरेश

सुनीता चुग

मोना सेदवाल

अकादमिक संपादक

सुधांशु भूषण

संपादक

मनीषा प्रियम

संपादन सहयोग

मनोज गौड़

उप प्रकाशन अधिकारी

प्रमोद रावत

प्रकाशन सहायक

अमित सिंघल

परिप्रेक्ष्य राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन संस्थान (नीपा) की चतुर्मासी हिंदी पत्रिका है। यह वर्ष के अप्रैल, अगस्त और दिसंबर माह में प्रकाशित की जाती है। संपादकीय विवरण के लिए कृपया आवरण (iii) देखें।

परिप्रेक्ष्य में प्रकाशित लेखों और अन्य सामग्री में व्यक्त विचार लेखकों के निजी विचार हैं। नीपा की नीतियों और विचारों से उनका कोई संबंध नहीं है।

परिप्रेक्ष्य

शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक-आर्थिक संदर्भ

वर्ष 25, अंक 3, दिसंबर 2018

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन संस्थान
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

500 प्रतियां

© राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन संस्थान, 2018
(भारत सरकार द्वारा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम 1956 की धारा 3
के अंतर्गत घोषित मानित विश्वविद्यालय)

इस पत्रिका का प्रकाशन प्रति वर्ष अप्रैल, अगस्त और दिसंबर माह में किया जाता है। इसकी प्रतियां चुनिंदा और इच्छुक व्यक्तियों तथा संस्थानों को निःशुल्क भेजी जाती हैं। यह नीपा की वेबसाइटः www.niepa.ac.in पर निःशुल्क उपलब्ध है। इसे प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति और संस्थान निम्निलिखित पते पर आवेदन करें :

संपादक

परिप्रेक्ष्य

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन संस्थान (नीपा)
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

प्रकाशन वर्ष : अक्टूबर, 2021

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन संस्थान (नीपा) के लिए कुलसचिव, नीपा द्वारा प्रकाशित तथा बचन सिंह, बी-275, अवन्तिका, सेक्टर-1, रोहिणी, नई दिल्ली द्वारा लेजर टाइपसेट होकर मै. पावर प्रिन्टर्स, नई दिल्ली में नीपा के प्रकाशन विभाग द्वारा मुद्रित।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 25, अंक 3, दिसंबर 2018

विषय सूची

संपादकीय 1
मनीषा प्रियम

आलेख

विनय कुमार कंठ
जन सांस्कृतिक आन्दोलन : वैचारिक, सामाजिक एवं रचनात्मक चुनौतियाँ 5

मनीषा प्रियम
वैश्वीकरण के युग में शैक्षिक सुधार : परिचर्चा क्या शिक्षक विहीन रहेगी? 17

सुभाष चन्द्र बसु, अंजलि पुरी एवं **शरत चंद्र बसु**
डिस्लेक्सिक बच्चों के पठन-लेखन की समस्याएं : ध्वनि की पहचान एवं सही क्रम बताने का अभ्यास 35

ऋतु बाला
शैक्षिक दस्तावेज़ों में परीक्षा का स्वरूप 61

लाजवंती एवं **सोहिल कुमार बंसल**
स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में सहसंबंध 77

शोध टिप्पणी / संवाद

कौशलेंद्र प्रपन्न
शिक्षा को गढ़ती राजनीति 103

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 25, अंक 3, दिसंबर 2018

चिंतक और चिंतन

सुनीता सिंह
महामना पंडित मदनमोहन मालवीय का शिक्षा दर्शन 109

पुस्तक समीक्षा

शालिनी तिवारी
थ्री रिवर्स एंड ए ट्री 131

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 25, अंक 3, दिसंबर 2018

संपादकीय

मनीषा प्रियम*

परिप्रेक्ष्य विगत 25 अंकों के माध्यम से शिक्षा, विशेष रूप से भारतीय शैक्षिक योजना तथा प्रशासन के विशिष्ट अंगों पर निरंतर प्रकाश डालता रहा है। यह अंक एक प्रकार से मील का पत्थर है। 25 अंकों का पूरा होना– यह अपने आप में संपूर्णता का लक्षण है। किंतु परिप्रेक्ष्य की संपादक मंडली में कहीं भी विराम का बोध नहीं है। समसामयिक शैक्षणिक विषयों पर चर्चा करने का उत्साह है, तथा नयी धाराओं को निहित करने की चेष्टा कायम है। इस अंक की शुरुआत पटना विश्वविद्यालय के गणित के चर्चित प्राध्यापक स्वर्गीय प्रोफेसर विनय कंठ के आलेख से होती है।

इस लेख में, श्री कंठ जन सांस्कृतिक आंदोलनों की चर्चा करर्त हैं। लेखक कहते हैं कि शुरुआत में इप्टा का संबंध रंगकर्म से था परंतु जल्द ही प्रगतिशील लेखक संघ और इप्टा ने विस्तृत संस्कृति क्रम को अपना कार्यक्षेत्र बना लिया था। लेखक का मानना है कि वैश्वीकरण और टेक्नोलॉजी, राजनीति तथा समाज और अर्थव्यवस्था में बदलाव के बावजूद कुछ मौलिक बातें हैं जिनका बने रहना इप्टा जैसे संगठन के लिए आवश्यक है। लेखक का मानना है कि इप्टा का काम सिर्फ नाटकों का मंचन करना नहीं किंतु एक गंभीर सांस्कृतिक हस्तक्षेप करना भी है। लेखक अपने अध्ययन में इप्टा के इतिहास, संस्कृति–विमर्श, परंपरा और लोक संस्कृति, लोकतंत्र पर खतरे जैसे विषयों पर बात कर रहे हैं। अंत में लेखक कहते हैं समाज को आज एक नया सांस्कृतिक आंदोलन चाहिए मगर उसे सचमुच जन स्तर पर जाना होगा। चुनौतियां बड़ी हैं और कई स्तर पर हैं किंतु संस्कृति और धरातल इसमें निबटने के लिए सबसे उपयुक्त है। इस प्रति के समापन तक श्री विनय कंठ हमारे बीच नहीं रहे। परिप्रेक्ष्य के माध्यम से हम उनके अंतिम लेख को पाठकों तक पहुंचा रहे हैं।

---

* प्रोफेसर, राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन संस्थान (नीपा), नई दिल्ली,
ई–मेल priyam.manisha@gmail.com

प्रियम द्वारा लिखा गया दूसरा आलेख वैश्वीकरण के युग में शैक्षिक सुधारों के विमर्श के कुछ महत्वपूर्ण विवादों को सामने लाता है। लेखिका कहती हैं कि यह विमर्श सीखने पर जोर देते हुए शिक्षण और शिक्षकों की अनदेखी करता है जैसे कि शैक्षिक सुधारों पर वैश्विक विमर्श अपने उद्देश्य को शिक्षकों के बिना ही प्राप्त कर लेंगे। यह लेख भारतीय मामले के प्रति अपने महत्वपूर्ण अवलोकन को निर्देशित करता है साथ ही यह लेख इस सवाल का उत्तर देने का प्रयास करता है कि हम किस तरह शैक्षिक परिवर्तन के बारे में सोचना शुरु कर सकते हैं जिसमें शिक्षण सीखने के लिए केंद्र बन जाता है। लेखिका कहती हैं कि विकासशील देशों में शिक्षार्थियों की एक पूरी नई पीढ़ी के लिए जान ''लर्निंग फॉर ऑल'' के एजेंडे में संभवत: महत्वकांक्षी नए आधार मिलेंगे यह सोच है, समालोचना है, और तर्क है जो ज्ञान के द्वार खोल देंगे लेखक का मानना है कि यह शिक्षक एजेंसी है जो इस बदलाव के वाहक है।

तीसरा लेख बसु, पुरी तथा बसु द्वारा डिस्लेक्सिक बच्चों के पठन-लेखन पर लिखा गया है। इनके शोध पत्र का उद्देश्य डिस्लेक्सिया से पीड़ित बच्चों के सामने पढ़ने-लिखने की समस्याओं और उन्हें ध्वनियों की पहचान तथा सही क्रम बताना सिखाने के तरीकों पर चर्चा करना है। प्रस्तुत शोधपत्र एक बच्चे ''अकुमार'' की केस स्टडी है जिसे डिस्लेक्सिया है। अकुमार का जन्म एक सरकारी अस्पताल में हुआ था। जन्म के एक सप्ताह बाद तक उन्हें इंक्यूबेटर में रखा गया। शैक्षणिक प्रगति के अलावा अकुमार अपनी उम्र के अन्य बच्चों की तरह ही काम करते हैं। उनके शरीर का दाहिना भाग बायें से कम सक्रिय है। यह शोध पत्र अकुमार के सामने आने वाली पठन लेखन की समस्याओं तथा उनकी मदद के उपचारात्मक उपाय बताता है। यह शोध पत्र बताता है कैसे डिस्लेक्सिया वाले बच्चों को संवेगात्मक स्थिरता संवेगों की अभिव्यक्ति, ध्वनी की पहचान एवं सही क्रम बताना जैसी चीजें सिखा सकते हैं। लेखक कहते हैं कि डिसलेक्सिया या अन्य किसी भी सीखने संबंधित समस्या हेतु नैदानिक कदम अति शीघ्र उठाने की आवश्यकता होती है। लेखक कहते हैं कि डिस्लेक्सिया वाले बच्चों के लिए विशिष्ट एवं व्यक्तिगत योजना का प्रारूप तैयार कर उन्हें मुख्यधाारा में लाने का प्रयास हो सकता है। डिस्लेक्सिया वाले बच्चों को सही तरीकों से पढ़ाने तथा समय पर मनोवैज्ञानिक की मदद प्रदान करने से बच्चे के विकास में मदद हो सकती है।

बाला द्वारा लिखा गया चौथा आलेख भारत की शिक्षा प्रणाली में परीक्षा के स्वरूप की जानकारी देता है। यह शोध पत्र पिछली डेढ़ शताब्दी में समय-समय पर गठित

शिक्षा आयोगों एवं समितियों की परीक्षा संबंधी विमर्श को पड़ताल की विषय वस्तु बनाता है। यह शोधपत्र ऐतिहासिक शैक्षिक दस्तावेजों में परीक्षा विमर्श की सीमाओं को भी रेखांकित करने का प्रयास करता है। इस शोधपत्र का निष्कर्ष यह निकला कि शैक्षिक दस्तावेज़ परीक्षा की अकादमिक एवं सामाजिक स्वीकृति वैधता एवं विश्वसनीयता की स्थिति की पड़ताल करते हुए उसको अपेक्षाकृत और अधिक स्वीकार्य वेद एवं विश्वसनीय बनाने का विमर्श पेश करते हैं। परंतु ऊंच-नीच के पदानुक्रम में बंटे हुए विद्यार्थियों के लिए परीक्षा सफलता के समान अवसर सृजित करने के लिहाज़ से कैसा बर्ताव करती आई है इसकी चिंता चिंतन-विमर्श देखने को नहीं मिला।

पांचवा आलेख लाजवंती एवम बंसल ने स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा के बारे में लिखा है। यह आलेख स्नातक स्तर के छात्र छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर का अध्ययन करना है। छात्र छात्राओं की इन चरों पर तुलना तथा दोनों चरों के मध्य सह-संबंधों का अध्ययन करना था। इस अध्ययन के लिए डी.ई.आई. विश्वविद्यालय, आगरा के स्नातक स्तर की तीन संकायों का चयन किया गया। प्रत्येक संकाय में 50-50 विद्यार्थी थे (25 छात्र व 25 छात्राएं) निष्कर्ष में पाया गया कि छात्र-छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर है। छात्रों की तुलना में छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि अधिक पाई गई। छात्र-छात्राओं की शैक्षिक आकांक्षा स्तर में अंतर नहीं पाया गया। छात्र-छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में मध्यम धनात्मक सहसंबंध पाया गया।

प्रपन्न द्वारा लिखा गया अगला लेख शिक्षा में राजनीति की भूमिका पर चर्चा करता है। लेखक का मानना है कि राजनीति ने शिक्षा नीतियों को तय करने में अहम भूमिका निभाई है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1977, 1985, 1988 या फिर 2005 की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा सभी में राजनीतिक हस्तक्षेप रहा। राजनीति में जो भी आया उसने अपने दृष्टिकोण तथा स्थापना को शिक्षा में समाहित करने का प्रयास किया। जिसके परिणाम स्वरूप राजनीति में कई विषय वस्तु शामिल हुए जो विवाद का कारण बने। उदाहरण के तौर पर शंगूर आंदोलन तथा कुछ राजनेताओं की आत्मकथा भी इसका हिस्सा बने। लेखक कहते हैं कि पहले भी कई राजनीतिक व्यक्तियों की आत्मकथाओं को शिक्षा में शामिल किया गया है किंतु उनसे बच्चों को जीवन संघर्षों को समझने तथा भविष्य के लिए रणनीति बनाने में सहयोग मिलता है। लेखक कहते हैं कि ऐतिहासिक शैक्षिक घोषणाओं के लक्ष्यों को पूरा ना कर पाने की कमी और रणनीति एवं योजना के स्तर पर

कमियां कारण रही। अंत में लेखक कहते हैं कि यदि हमें 2030 के विकास लक्ष्य को हासिल करना है तो राजनीतिक और नागर समाज की प्रतिबद्धता की आवश्यकता पड़ेगी। हमें पूरी इच्छाशक्ति और कार्य योजना के साथ प्रबंधन को समाज का इस्तेमाल करना होगा।

सातवां आलेख सिंह द्वारा लिखा गया है। इनका लेख पंडित मदन मोहन मालवीय जी के शिक्षा दर्शन व इस समय की शिक्षा परिस्थिति में उसकी संगति को समझने का प्रयास है। प्रस्तुत शोध पत्र शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर पंडित मदन मोहन मालवीय जी के दृष्टिकोण को बताते हैं। इस शोधपत्र से हमें जानकारी प्राप्त होती है कि पंडित महामना जी ने इस प्रकार की शैक्षिक संकल्पना स्थापित की जिससे मानव में सहजीविता सौहार्द बना रहे। वे चाहते थे कि सभी उच्च शिक्षा प्राप्त करें एवं विधाओं में कौशलयुक्त होकर अपनी आजीविका प्राप्त करें। वह धर्म तथा देश प्रेम पर भी ज़ोर देते थे। आज की वर्तमान भारतीय एवं वैश्विक शैक्षिक परिस्थिति में उनका शैक्षिक दर्शन सर्वथा उपयोगी प्रमाणिक और प्रासांगिक है।

इन लेखों में शैक्षणिक संस्कृति, चिंतन तथा नीतिगत विषयों पर विस्तृत चर्चा है। पुस्तक समीक्षा भी इसी चर्चा की श्रृंखला है। हम आशा करते हैं कि पाठक इन लेखों के माध्यम से शैक्षणिक संस्थान में विस्तार कर सकेंगे।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 25, अंक 3, दिसंबर 2018

जन सांस्कृतिक आन्दोलन
वैचारिक, सांस्कृतिक एवं रचनात्मक चुनौतियाँ

विनय कुमार कंठ*

सारांश

इप्टा की पैदाइश एक खास राजनीतिक परिस्थिति में एक विचारधारा से जुड़कर हुई थी हालांकि उस समय भी राजनीतिक संगठन के साथ इसके संबंध पर एक बहस चली थी। परिस्थिति काफी बदल चुकी है और विचारों का परिस्थिति के साथ बदलना जरुरी और जायज है। हाल के समय में बदलाव अपने आप में एक चुनौती बन चुकी है। इसलिए इप्टा के बारे में पुनर्विचार जरुरी हो चुका है चाहे विचार या विचारधारा की बात हो, या संगठन और इसके क्रियाकलाप की या राजनीतिक संगठन के साथ इसके रिश्ते की। पैदाइश के वक्त इप्टा का संबंध मूलत: रंगकर्म से था, मगर जल्दी ही प्रगतिशील लेखक संघ और इप्टा ने व्यापक संस्कृतिकर्म को अपना कार्यक्षेत्र बना लिया था जो स्वभाविक और अनिवार्य था। आज के समय में वैश्वीकरण और टेक्नॉलाजी के दुहरे प्रभाव से संस्कृति के सवाल और अधिक जटिल और संकटग्रस्त हो चुके हैं। दूसरी ओर राजनीतिक का स्वरूप भी इतना बदल चुका है कि उसकी अनदेखी नहीं की जा सकती। तीसरी तरफ समाज और अर्थव्यवस्था में भी बदलाव आया है। इन सबके बावजूद कुछ मौलिक बातें हैं जिनका बने रहना इप्टा जैसे संगठन के चरित्र, पहचान और प्रासंगिकता के लिए अनिवार्य शर्त की तरह है।

प्रस्तावना

सामाजिक प्रतिबद्धता और जनपक्षधरता संगठन का पहला मूल वैचारिक आधार है, जिस पर समझौते की गुंजाइश नहीं। उसका पूरक है प्रतिरोध की संस्कृति, यानी अन्याय

---

*दिवंगत प्रोफेसर विनय कुमार कंठ, पटना विश्वविद्यालय में गणित के प्रोफेसर थे और जाने माने शिक्षाविद्, समाजसेवी एवं मानवाधिकार कार्यकर्त्ता थे।

का सभी स्तर पर विरोध करने की प्रतिबद्धता। इप्टा के वैचारिक आधार का तीसरा तत्व है भारत की विविधतापूर्ण सामाजिक संस्कृति की स्वीकृति, जिसका पूरक तत्व है एक समग्रतामूलक दृष्टिकोण, जो बाँटता नहीं है वरन सभी की आजादी और स्वतंत्र पहचान का कायल है। संकीर्णता व संप्रदायवाद का विरोध इसकी एक महत्वपूर्ण कड़ी है। इन सिद्धांतों के बीच यह ध्यान में रखना जरुरी है कि इप्टा का कार्यक्षेत्र संस्कृति है। इन तमाम वजहों से संगठन के रूप में भले ही यह राजनीतिक सगठन न हो, राजनीति से इसकी गतिविधियों को काटकर नहीं देखा जा सकता। इप्टा महज कला और संस्कृति आन्दोलन नहीं बल्कि जन आन्दोलन भी है।

बदलते समय में परिस्थिति और शब्दों के अर्थ को गंभीरता से समझना, अपने काम की समीक्षा करने के साथ साथ अपनी नई भूमिका को खुलेपन और सूझबूझ से तय करना इप्टा को जीवन्त बनाने में सहायक होगा। नई पीढ़ी, नए लोग, नई समझ व अपेक्षाओं के साथ नई विधायें और नए सपने भी लेकर आती है, जिसका जवाब अक्सर पुराने वक़्त के पास नहीं होता। इस भरोसे के साथ आज खुली बहस की अपेक्षा है जो पुराने खाँचों मे बंधी न हो, लेकिन अपनी ही जमीन पर खड़ी हो। इस संदर्भ में कई नए-पुराने सवाल उभरते हैं जिनमें कुछ सवालों एवं संदर्भों को उठाने की कोशिश करें तो शायद बातचीत का एक सिलसिला बन पाएगा।

(क) इप्टा एक सांस्कृतिक हस्तक्षेप: इप्टा का काम महज कुछ नाटकों का मंचन नहीं, वरन एक गंभीर सांस्कृतिक हस्तक्षेप है। गंभीर इस अर्थ में कि बिना वैचारिक समझ के संस्कृतिकर्म या सिर्फ रंगकर्म का कुछ ख़ास महत्व नहीं - कम से कम इप्टा के संदर्भ में और आज के दिन में समस्त संस्कृतिकर्म से जूझना इप्टा के लिए पहले से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है जब संस्कृति का स्वरूप तेजी से बदल रहा हो और इस पर बजार और सत्ता की पकड़ बढ़ रही हो। संस्कृति की जिस समझ से इप्टा जुड़ी हुई है उसमें जन, जनसंस्कृति और आम फहम लोगों की समझ को अहमियत कहीं ज्यादा दी जाती है। ये सारी बातें आज संकट से घिर चुकी हैं।

आज जब संस्कृति के नाम पर धर्मनिरपेक्षता पर सवाल खड़े हो रहे हैं तो लोक चेतना में रचे-बसे खुले स्वरूप वाले धर्म को समझना-समझाना जरुरी है। यह धर्म के संस्थागत रूप से अलग है, जिसकी स्वतंत्र सत्ता होती है और सत्ता से जुड़ा शोषण-उत्पीड़न। भक्ति आन्दोलन ने बखूबी धर्म के लोकस्थित स्वरूप को पकड़ा था, जिसमें सत्य की सत्ता के साथ मानवीय चेतना का सम्मान था।

संस्कृति कई कला विधाओं के रूप में सामने आती है, जिसमें विचार पक्ष से भी ज्यादा सीधे ढंग से रचनात्मक व सृजनात्मक पक्ष की अहमियत होती है। भारत के हर हिस्से में अलग अलग किस्म की लोक कला विद्यमान है। शास्त्रीय कला विधाओं के अलावा इनकी अपनी सृजनात्मक संभावनाएँ हैं जो आज मीडिया या कारॅपोरेट क्षेत्र द्वारा पोषित कला व संस्कृति से अलग और कहीं अधिक समृद्ध हैं।

(ख) इतिहास इप्टा का अपना इतिहास है और इप्टा एक खास इतिहास की उपज है। इतिहास समझ देता है, इतिहासबोध समाज के बारे में अंतर्दृष्टि भी देता है। मगर कभी-कभी वह दृष्टि को बाँधता है, सीमाएँ भी तय कर सकता है और कई बार बोझ भी बन जाता है। लेकिन कला तो वर्तमान और इतिहास दोनों के अतिक्रमण का उपादान हो सकती है खासतौर पर इप्टा के माध्यम से जो समाज से सरोकार रखने वाला संगठन है और जिसका वादा है एक बेहतर समाज का निर्माण। इप्टा का इतिहास प्रेरणा देता है – प्रतिबद्ध संस्कृतिकर्म की प्रेरणा, महज नारों में नहीं, सुन्दर से सुन्दर कला प्रदर्शन द्वारा, एक गहरी संवेदना के साथ। फैज, मजाज या साहिर की शायरी हो या अब्बास की फिल्म गिरीश कर्नाड के नाटक- इन सभी में कला की ऊँचाईयों के साथ गहरी मानवीय संवेदना है।

साथ ही इन सबके पीछे स्पष्ट विचार थे जिन पर इप्टा के कलाकारों का भरोसा था। मगर जिस विचारधारा से इप्टा ने अपनी यात्रा शुरु की थी, उसका मायने, प्रभाव और आभामंडल पहले की तरह नहीं रहा। दुनिया के कई देशों में उसकी पुनर्व्याख्या और आरंभिक स्थापनाओं का अतिक्रमण किया गया है – देश-काल व परिस्थिति के अनुसार। अपने देश और समाज में भी नई संभावनाओं को टटोलना जरुरी है और वह भी अपनी पुरानी जमीन पर खड़े होकर। जोकि यह संस्कृतिकर्म का हिस्सा उतना नहीं फिर संस्कृतिकर्मी भी अपने हिस्से का सच अपने ढंग से हमेशा खोजा करता है। आज भी उसकी जरुरत है। यह एक ओर अगर वैचारिक चुनौती है तो संस्कृतिकर्मी को उसका प्रत्युत्तर खोजना है और रचना भी है।

(ग) इप्टा और जनता हम हमेशा कहते है कि जनता इप्टा की नायक है और जनता से जुड़कर वह अपनी समझ बना सकती है। मगर यह कहना जितना आसान है इस पर अमल करना उतना ही कठिन। इस देश की बहुसंख्यक जनता अपनी बातें लोकभाषा में अपने मुहावरों में और लोककला की विभिन्न विधाओं में अभिव्यक्त

करती है, जिनका ज्ञान शहरों में सीमित ही नहीं बल्कि हमारी समझ के हाशिए पर जा चुकी है। उसे फिर से पाना या ढूँढना भी कठिन है।

लम्बे समय तक इप्टा के महासचिव रहे प्रो. निरंजन सेन की बात आज भी प्रासंगिक है, ''यह आन्दोलन तभी तक जिन्दा रहेगा जब तक जनता के कलाकार अपने को जनता से जोड़े रखें, वे अपनी कला के माध्यम से, जो कुछ अच्छा और स्वस्थ है, उसकी लड़ाई लड़ें। वे जनता से सीखें। उन सभी कलारूपों का अध्ययन करें जिनसे जनता जुड़ी है। इप्टा को अपसंस्कृति के खिलाफ व्यापक लोकतांत्रिक मोर्चे का रूप लेना होगा।''

निरंजन सेन जिस अपसंस्कृति की बात करते हैं, वह कुछ तो बाजार, मीडिया और बाह्य प्रभाव से आया है, मगर उसके स्त्रोत हमारे अपने समाज की विकृतियों में भी हैं। ये विकृतियाँ देशज संस्कृति की नहीं, वरन पारम्परिक ऊँच-नीच के भेद-भाव व सोच की कुछ संकीर्णताओं के साथ आधुनिक भोगवादी मानसिकता और उच्छश्रृंकलता से भी जुड़ती है। इसलिए 'स्वस्थ और अच्छे' के चयन की भी सलाहियत जरूरी हो जाती है चाहे परंपरा हो या आधुनिकता। कैफी आजमी की बात को दुहराना यहाँ बेमानी नहीं, ''आज फिरकापरस्ती का प्रयोग हमारी आज़ादी जम्हूरियत सेक्युलरिज़्म के लिए ज़बरदस्त खतरा बन गया है, हम उसका मुकाबला करने की ज़िम्मेदारी सिर्फ राजनीति पर नहीं छोड़ सकते जो हर कदम यह सोच कर उठाती है कि इसमे वोट बढ़ेंगे या घटेंगे। वोटों की इस सियासत से इप्टा का बराह-ए-रास्ता कोई ताल्लुक नहीं। इसलिए आज मुल्क जिन खतरों से घिरा है उसका मुकाबला करने, उन्हें शिकस्त देने के लिए इप्टा को ज्यादा मजबूत और ज्यादा सरगर्म करना जरूरी है।'' गौरतलब है कि जिस मुक़ाबले की उम्मीद कैफी साहिब कर रहे हैं वह सांस्कृतिक क्षेत्र का मुक़ाबला है, सीधा सियासी नहीं।

(घ) संस्कृति-विमर्श संस्कृति की चर्चा में टैगोर या हजारी प्रसाद द्विवेदी या जयशंकर प्रसाद का उल्लेख संभवत: इप्टा के प्लैटफार्म पर अटपटा लगे लेकिन कतई अप्रासंगिक नहीं। यदि टैगोर ने भारत को महामानवसागर कहा (विचित्र देश भी!), तो द्विवेदीजी ने स्पष्ट किया: ''देश और जाति की विशुद्ध संस्कृति केवल बात की ही बात है। सब कुछ में मिलावट है, सबकुछ अविशुद्ध है।'' और फिर वे जोड़ते है कि ''शुद्ध है केवल मनुष्य की जिजीविषा। वह गंगा की अबाधित-अनाहत धारा के समान सबकुछ को हजम करने के बाद भी पवित्र है।'' संस्कृति कि सामासिकता के साथ गंगा और पवित्र है। संस्कृति की सामासिकता के साथ गंगा

और पवित्रता के शुचिता-प्रधान बिम्ब की जगह एक नई जनोन्मुखी व्याख्या को आगे बढ़ाते हुए वे कहते है ''मनुष्य की जीवन शक्ति बड़ी ही निर्मम है, वह सभ्यता और संस्कृति के वृथा मोहों को रौंदती चली आ रही है। न जाने कितने धर्माचारों, विश्वासों, उत्सवों और व्रतों को धोती-बहाती यह जीवन धारा आगे बढ़ी है। संघर्षों से मनुष्य ने नई शक्ति पाई है। हमारे सामने समाज का आज का जो रूप है वह न जाने कितने ग्रहण और त्याग का रूप है। ''संस्कृति की शुद्धिकरण की ओर ले जानेवाली 'वर्जनशील' अहंकार के निषेध के साथ द्विवेदीजी ने आर्येतर जतियों के अवदान को प्रतिष्ठित किया है। नामवर सिंह ने टिप्पणी की है कि वस्तुत: यह एक दूसरी परंपरा की खोज का प्रयास है जिसका प्रयोजन मुख्यत: पंडितों की इकहरी परंपरा की संकीर्णता का निर्देशन है। आज के संदर्भ में इस स्थापना का कितना महत्व है, यह कहने की शायद जरूरत भी नहीं।

प्रसाद ने कहा है कि ''संस्कृति सौंदार्य-बोध के विकसित होने की मौलिक चेष्टा है।'' द्विवेदीजी ने ऐसी एक लोकोन्मुखी मौलिक चेष्टा अपनी सर्जनात्मक कृतियों में की है, मगर इप्टा की चिन्ताओं के मद्देनजर विचार-प्रवाह (1959) में संकलित उनके एक लेख 'जनता का अन्त:स्पन्दन' खासतौर पर उल्लेखनीय है। लेख इस चिंता से शुरु होता है कि कुछ ऐसा प्रयत्न होना चाहिए कि इस वंचित जनता के भीतर रसप्राहिक संवेदना उत्पन्न हो, वे भी 'सुंदर' का सम्मान करना सीखें, 'सुंदर' को पहचानना सीखें। वे इस बात से असहमत हैं जिस जनता को भर पेट अन्न न मिले वह सौन्दर्य का सम्मान नहीं कर सकती, चूँकि उनका सौन्दर्यशास्त्र शास्त्रीय होते हुए भी लोकोन्मुख है।' वे कहते हैं: ''जीवन को सुंदर ढंग से बिताने के लिए जीवन का एक रूप होना चाहिए। बहुत से लोग 'कुछ न करने को भलापन समझते हैं। यह गलत धारणा है। सुंदर जीवन क्रियाशील होता है क्योंकि क्रियाशीलता ही जीवन का रूप है। क्रियाशीलता को छोड़कर जीवन का सौन्दर्य टिक नहीं सकता।' समाजवादियों की तरह उनका निष्कर्ष है कि इस भाव से चालित जनसमाज अंतत: ''राजनीतिक और आर्थिक शक्तियों पर कब्जा करने के प्रयास'' से कम पर संतुष्ट नहीं हो सकता क्योंकि ''समाज व्यवस्था को ज्यों-का-त्यों स्वीकार लेना एकदम असंभव हो गया है।'' ('दूसरी परंपरा की खोज' में पृ. 115 पर उद्धृत) 'प्राकृतिक सौन्दर्य से भिन्न किन्तु उसके समानान्तर चलनेवाला मानवचरित सौन्दर्य' के महत्व को स्थापित करते हुए सौन्दर्य की जगह उन्होंने 'लालित्य' शब्द का उपयोग किया। उनकी

लालित्य-मीमांसा का दूसरा सूत्र है 'बंधन के विरुद्ध विद्रोह', और तीसरा है कि 'सौन्दर्य मनुष्य की सर्जना है, सृजनशीलता है'।

उपर्युक्त चर्चा का मकसद था इस बात की ओर ध्यान आकृष्ट करना कि इप्टा को अपने सांस्कृतिक हस्तक्षेप में संस्कृति-विमर्श को गहरे तौर पर शामिल करना होगा, भले ही यह परंपरावादी लगे। धर्म-परंपरा-विरासत समाज की बातें हैं, समाज पर इनका गहरा असर है। इनपर बहस न करके या एकांगी आलोचना करके जनता से जुड़ने के कई रास्तों, तरकीबों को आप ख्वामख्वाह बंद कर देते हैं। इनमें अच्छी-बुरी अनेक बातें हैं जिनकी पड़ताल जरुरी हो जाती है। बँधे-बँधाये खयालातों से निकलकर देखना भी जरूरी है।

(ङ) परंपरा और लोक-संस्कृति बिहार इप्टा ने एक तरफ धार्मिक बिम्बों और पारंपरिक विधाओं को लेकर समय-समय पर कलात्मक प्रयोग किए हैं। कभी कभी नए मुद्दों से उन्हे जोड़कर भी प्रयोग हुए हैं (उदा. 'मुझे कहाँ ले आए हो कोलंबस')। 'हे राम' अब बिहार इप्टा का एक प्रभावशाली सालाना कार्यक्रम है जिनमें संत कवियों की कविताओं इत्यादि का पाठ आम बात है। लेकिन यह नजरिया अभी तक नियमित रूप नहीं ले पा रहा है। पारंपरिक बातों को लाने में अनेक द्विविधाएँ और कठिनाइयाँ हैं चूँकि अक्सर उनमें रूढ़ियों और अंधविश्वास का बोलबाला हो जाता है जो शोषण-उत्पीड़न का आधार बन जाती हैं। कई बातें अप्रासंगिक हो जाती है, या मृतप्राय। कई मूल्य आज के मान्य सिद्धांतों के प्रतिकूल रहते हैं, जिनमें समता का सिद्धांत भारत में खासतौर पर उल्लेखनीय है। इन सब के साथ सिद्धांत और आचरण का फर्क भी महत्वपूर्ण हो जाता है। इसलिए उनमें जीवन्त लोकोपयोगी तत्वों को खोजना आवश्यक है।

बिहार की लोकसंस्कृति में अन्य क्षेत्रों की तरह अनेक उल्लेखनीय विधाएँ व कलाकार हैं, जो जमीन और परम्परा के साथ आम आदमी की जिंदगी से जुड़े हैं। इसमें उनकी जद्दोजहद, मेहनत इत्यादि के अलावा उनकी जिजीविषा, आकांक्षाएँ, उल्लास, उत्सवधार्मिता आदि भी शामिल हैं। बिहार की लोकभाषाओं में- मैथिली, मगधी, भोजपुरी इत्यादि में- समृद्ध साहित्य रचा गया है जिसमें नाटक, गीत आदि शामिल हैं। भिखारी ठाकुर की कविताएँ व नाटक उसका बढ़िया उदहारण है, जिसमें नारी-विमर्श और दलित-विमर्श आधुनिक है और जमीनी सच्चाई से जुड़ा हुआ भी। गौरतलब है कि बिना औपचारिक शिक्षा के उनकी दृष्टि इतनी पैनी और समझ इतनी साफ थी और वे तुलसीदास को

अपना साहित्यिक गुरु मानते थे। सवाल जितना परम्परा का है उससे ज्यादा परम्परा की व्याख्या और सही उपयोग का है।

लोकतंत्र और संविधान ने एक नई सोच को आधार दिया है, मगर उसे भी सतही तौर पर आँख मूंदकर मान लेना काफी नहीं।

(च) लोकतंत्र पर खतरे राजसत्ता और अर्थतंत्र के गठबंधन ने लोकतंत्र को ही खतरे में डाल दिया है। एक ओर जल, जमीन और जंगल या फिर खदान जैसे प्राकृतिक संसाधन पर जनता के हक़ या हितों की उपेक्षा करते हुए उन्हें कॉरपोरेट सेक्टर को सौंपा जा रहा है, तो दूसरी ओर उसके विरोध के आन्दोलन का बेरहमी से दमन किया जा रहा है। मीडिया पर राजसत्ता और कॉरपोरेट क्षेत्र के बढ़ते नियंत्रण के साथ विज्ञापनों का हमला जनमानस को प्रभावित करता है और चुनाव पर भी इसके असर दिखाई देते हैं। अब तो सोशल मीडिया भी राजनीति पर अपना प्रभाव डालने लगी है, जहाँ तक हमारे देश की जनता की कोई पहुँच है ही नहीं। परिणाम स्वरूप चुनाव दिन-ब-दिन महँगे हो रहे हैं, संसद में अरबपतियों की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है और राजनीति उत्तरोत्तर जनविरोधी होती जा रही है। संसद और विधानसभा ऐसे कई कानून समय-समय पर बनती रही हैं जो जनता के खिलाफ जाते हैं (हाँ साथ ही कभी चुनाव के मद्देनजर,कभी जनदबाव से जनता के पक्ष में भी कानून बनते हैं, भले उनका क्रियान्वयन नहीं हो पाता)। कार्यपालिका जिस तरह से कानून और कार्यक्रम लागू करते हैं उनमें जनता के प्रति कोई संवेदना शायद ही कभी दिखाई देती है। यहाँ तक की न्यायपालिका भी समर्थ का ही साथ देती है, उसका तो कोई दोष होता ही नहीं।

(छ) संविधान के मूल्य और संस्कृतिकर्म मानवीय, सांस्कृतिक या नैतिक मूल्यों के साथ भारतीय संविधान ने भी आधुनिक युग के अनुरूप एक किस्म के मूल्यों को मान्यता दी है, जिन्हें स्वाधीनता आन्दोलन के काल में ही व्यापक स्वीकृति मिल चुकी थी। अमूमन ये मूल्य जनपक्षीय हैं। संविधान की प्रस्तावना में ये मूल्य साफ तौर पर रखे गए हैं- व्यापक अर्थों में न्याय, स्वतंत्रता, समता और भाईचारा के सिद्धांत। इस संविधान द्वारा– जो भारत के लोगों ने अपने आप को सौंपा है– एक लोकतांत्रिक गणराज्य बनाने का वादा किया गया है। संप्रभुता के साथ यह स्पष्ट लिखा गया कि राज्य और देश पंथनिरपेक्ष रहेगा। वस्तुतः सामाजिक मूल्य सदैव धर्मनिरपेक्ष रहे हैं और संविधान इस सिद्धांत को और पुष्ट करता है, जिसे भारतीय

न्यायपालिका ने संविधान का एक आधारभूत सिद्धांत और मूल्य घोषित किया है। दुर्भाग्य है कि समाज में चारों तरफ न्याय की अवहेलना है और वह भी अक्सर राज्य के तंत्र द्वारा। गरीबी, भुखमरी, शिक्षा या स्वास्थ्य सुविधा का अभाव आज भी समस्याएँ हैं और आर्थिक विषमता में और तेजी से वृद्धि होती जा रही है। नागरिक स्वतंत्रताओं पर नए खतरे मंडरा रहे हैं। राजनेताओं की असहिष्णुता बढ़ी है और बोलने की आजादी भी कभी-कभी छीन ली जाती है, चाहे पुलिस के सहारे हो या असहिष्णु लूम्पेन कार्यकर्ताओं के द्वारा। समाज में भाईचारे की जगह वैमनस्य बढ़ रहा है और कुछ राजनीतिक संगठन और विचारधाराएँ इन्हें बढ़ावा देते हैं। जाहिर है ऐसे समय में संस्कृतिकर्मियों की भूमिका भी बढ़ जाती है, और उनके लिए खतरे भी। इन खतरों के बीच रचनाधर्मिता, साहस और तरकीबें कैसी हों ये तय करना जरुरी है।

(ज) सांप्रदायिकता का सवाल आज सांप्रदायिकता का सवाल अप्रत्याशित ढंग से भयावह रूप ले रहा है। इसके सैकड़ों उदाहरण देश के विभिन्न हिस्सों से लगातार आ रहे हैं। छोटे-बड़े दंगों की घटनाएँ भी घट रही हैं- बड़ी घटनाओं की रिपोर्ट अगर आती भी है, तो छोटी घटनाओं का कोई जिक्र नहीं होता। जब-तब ऐसी बातें कही जाती हैं जो सांप्रदायिक उन्माद को बढ़ाती हैं। चुनाव के समय बिहार के ही एक नेता ने कह डाला कि जो अल्पसंख्यक समुदाय की हिमायत करते हैं उन्हें इस मुल्क में रहने का हक़ ही नहीं है।

और तो और, पिछले कुछ समय से धर्मनिरपेक्षता पर अनेक किस्म के वैचारिक हमले हो रहें हैं, जो हाल में केंद्र में सत्ता परिवर्तन से और बेखौफ हो गया है। अब किताबें और विचार तक स्वतंत्र नहीं, यहाँ तक कि शिक्षण संस्थान भी इससे मुक्त नहीं। कई राज्यों में पाठ्यपुस्तकों का पुनर्लेखन हो रहा है, दिल्ली विश्वविद्यालय में रामायण पर एक विश्लेषणात्मक पुस्तक को वापस लिया गया, धार्मिक भावना को ठेस पहुँचने के नाम पर कुछ पुस्तकों को प्रकाशकों ने वापस ले लिया। अब ज्यादा खुले ढंग से अल्पसंख्यक-विरोधी बातें कहीं जा रही हैं। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि ऐसे तत्वों को छूट मिल गई है।

यह राजनीतिक सवाल तो है, मगर समाज में सांप्रदायिक सोच का बढ़ना ज्यादा खतरनाक बात है। ये सवाल मानवीय मूल्य व संवेदना से भी जुड़ते हैं जिन्हें आज के कोलाहल में पुनर्जीवित करना संस्कृति कर्मियों का सीधा दायित्व बनता है। शायद सीधी आलोचना से ज्यादा ही महत्वपूर्ण हो चुका है इस बदली हुई सोच की विकृतियों को कला और विचार के द्वारा उजागर करना।

(झ) संस्कृतिकर्म और अनुशासन का सवाल संस्कृतिकर्म अनिवार्यत: एक अनुशासित व्यवहार है। खेल की तरह कला साधना में भी अभ्यास जरुरी होता है, संभवत: और लम्बी अवधि तक और मन के स्तर पर भी। बाजार ने कला को आय का जरिया बना दिया जिसमें साधना की जगह बाजीगरी बढ़ गई है, मगर ऐसी कला में तात्कालिक सफलता की गुंजाइश भले ही हो, इनसे गहराई नहीं आ पाती, मानवीय मूल्य प्रतिष्ठा नहीं पाते। इप्टा एक बड़ी जिम्मेदारी के साथ संस्कृतिकर्म में जुटी है, जिसमें वैयक्तिक साधना के साथ सामाजिक सोच को भी जगह देना जरुरी हो जाता है। इसके लिए समझ और सरोकार के दायरे को बढ़ाना जरुरी हो जाता है, बगैर निष्ठा, धैर्य और आत्मानुशासन के संभव नहीं। और बगैर अनुशासन के आन्दोलन बड़ा नहीं बन सकता।

(ञ) बदलाव का संघर्ष और प्रतिरोध की क्षमता इप्टा अपने जन्म से समाज को बदलने की लड़ाई लड़ रही है। इस लड़ाई में जुल्म का तीखा अहसास और विरोध है, और जनता को लड़ने का नियंत्रण है जो बिना उम्मीद और जज्बे के बेमानी हो सकता है। फैज हों, या कैफी हों, या नागार्जुन या इप्टा के अन्य पसंदीदा शायर-कवि-साहित्यकार, अलग-अलग अंदाज में सभी ने ऐसा ही लेखन किया। जब फैज कहते है 'यूहीं हमेशा उलझती रही जुल्म से खल्क/ ना उनकी रस्म नई है, न अपनी रीत नई/ यूहीं हमेशा खिलाए हैं हमने आग में फूल/ न उनकी हार नई है, न अपनी जीत नई', या फिर 'हम देखेंगे/ लाजिम है कि हम देखेंगे/ वो दिन कि जिसका वादा है/ जो लौह-ए-अजल में लिखा है/ जब जुल्मे-ओ-सितम के केह-ए-गरों रुई की तरह उड़ जाएँगे' इत्यादि, तो इनमें वही जज्बा और निमंत्रण है। जुल्म के खिलाफ लड़ाई कोई नई ईजाद नहीं, लेकिन इप्टा की यह मूल प्रतिबद्धता है, जिस पर समझौता नहीं हो सकता, भले ही लड़ाई के नए-नए मुकाम और तौर-तरीके बनते रहें।

उसी तरह जन स्तर पर हजारों लोकगीत हैं, किस्से-कहानियाँ हैं, लोकनाट्य है- जिसका मूल स्वर अन्याय का विरोध है या जनता की जीत है। जनता से जुड़ने का सवाल उनके दुख-दर्द से जुड़ना है, उम्मीदों-आकांक्षाओं-सपनों से जुड़ना है, उनके संघर्ष से जुड़ना है और उनकी सोच व संस्कृति से जुड़ना है। संविधान-कानून या मानव अधिकार की अवधारणा ने इन सब को एक नया संदर्भ, वैचारिक आधार और वैधता दी है। लेकिन यदि नए शब्द और मुहावरे गढ़े जाते हैं, जो पुराने जाने-पहचाने विधाओं व मुहावरों से

बिल्कुल अलग-थलग हों तो उनका असर घट जाएगा। कलाकार नए मुहावरों एवं तौर-तरीकों की खोज करता है और उसे जनता के बीच जाना है तो उनकी सोच से परिचय होना हमेशा उपयोगी होगा ही भले वह हमेशा जरुरी न हो।

विरोध और संघर्ष अपनी राजनीति गढ़ता है जो सत्ता की राजनीति से भिन्न और ज्यादा जोखिम भरा होता है। इस राजनीति की विचारधारा कई किस्म की हो सकती है मगर जब तक वह जुल्म व अन्याय के खिलाफ है, और जनता के पक्ष में बदलाव के लिए खड़ी है, तब तक कोई वजह नहीं कि वह इप्टा के संस्कृतिकर्म में शामिल न किया जाए। संस्कृतिकर्मी को हर सवाल पर राजनीतिक पार्टी की तरह अपनी राय जाहिर करना न तो जरुरी है, न ही मुमकिन।

(ट) नौजवानों के सवाल आज की नौजवान पीढ़ी पहले से ज्यदा परेशान है। तेजी से बदलती परिस्थितियाँ और चुनौतियाँ, नए अवसरों के साथ रोजगार की अनिश्चितता, बाजार का मायाजाल, नई तकनिकी से जुड़ी आभासी दुनिया जहाँ एक कृत्रिम यथार्थ रचा जाता है, परिवार और समाज में रिश्तों की टूटन, इत्यादि ढेर सी बातें हैं जो उसे परेशान कर देती हैं। पिछली पीढ़ियों के साथ विचारों पर भी उसका कोई अडिग भरोसा नहीं रहा। सवाल उठा रहा है, यह अच्छी बात है, मगर न पिछली पीढ़ी के पास साफ जवाब है, न उसके अपने अनुभव में। कभी कभी इन सारे जवाबों में एक तल्खी आ जाती है, और उनमें फिसलन ही फिसलन रहती है। क्या इप्टा उनकी कोई मदद कर सकती है? शायद हाँ। अगर उनका मकसद महज कलाकार बनना है तो भी इप्टा सीखने की एक माकूल जगह है, क्योंकि उनसे इप्टा की अपनी अपेक्षाएँ कहीं ज्यादा हैं। यदि कलाकारों में सामाजिक प्रतिबद्धता का अंकुरण हो सके तो कुछ और बात बढ़ेगी। और कुछ हो न हो यदि इप्टा के साथी एक बड़ी मानवीय संवेदना से जुड़ाव महसूस करें तो वे बेहतर इंसान और बेहतर कलाकार बन पाएंगे। मुमकिन है इप्टा में सीखे कौशल को कई नौजवान आय का स्रोत भी बना पाएँ, और यह भी ज़रुरी नहीं कि उनके लिए वे वैचारिक स्तर पर समझौता ही करें।

वैसे इप्टा के नए साथियों को यह समझना ज़रुरी है कि यह एक आंदोलन है– समाज के संदर्भ में और कला के क्षेत्र में भी। वही इप्टा की ऊर्जा का स्रोत है और उसका वैचारिक आधार भी। सवालों से, चुनौतियों से जूझने का जज़्बा जब नए सौंदर्य की कल्पना करता है या फिर सृजन, तो उसका नशा कुछ और है, जिसके सामने दुनियावी सफलता फीकी पड़ जाती है।

(ठ) कार्यक्रमों का स्वरूप उपरर्युक्त संदर्भ मे इप्टा को अपनी गतिविधियों और व्यापक स्तर पर नियोजित एवं संचालित करनी होंगी। अक्सर इसका स्वरूप स्थानीय स्तर पर ही निर्धारित हो सकेगा, किन्तु कुछ सामान्य सिद्धान्त राज्य या संभवत: देश के पैमाने पर सुझाए जा सकते हैं। ऊपर आई ऐसी बातों के अलावा कुछ और सुझाव नीचे दिये जा रहे है:

(i) विभिन्न किस्म की कार्यशालाओं के माध्यम से इसकी शुरुआत की जा सकती है, जिनके विषय अलग अलग हो सकते है जैसे: अभिनय, तकनीकी पक्ष, विचार या समझ से संबंधित, लेखन इत्यादि। इन कार्यक्रमों का लगातार चलना आवश्यक होगा, तभी माहौल बन पाएगा और नई ऊर्जा का संचार होगा। इन कार्यशालाओं में वरिष्ठ साहित्यकार, बुद्धिजीवी, सामाजिक-राजनैतिक कार्यकर्ताओं इत्यादि को शामिल किया जाना चाहिए।

(ii) नए लोगों, नई पीड़ी और नए विचारों को लाए बगैर न तो कार्यक्रम संभव होंगे, न उपयोगी। नई पीड़ी की तबीयत, अपेक्षाएँ, या सोचने का ढंग पहले से अलग-थलग है, वे मजे से नई तकनीक अपनाते हैं, जो उनमें कलात्मकता या रचनात्मकता की खोज अभी तक गौण है।

(iii) आज की चर्चा में, कार्यशालाओं में, बहस में संवाद को स्थापित करना पहले से कहीं ज्यादा जरुरी हो गया है, जिसके कई कारण हैं। यह सिलसिला औपनिवेशिक काल में शुरु हुआ जब लोक स्तर की भाषा, मुहावरे, किस्से कहानियाँ, मिथक, संस्कृति की अभिव्यक्ति, ज्ञानप्रणाली इत्यादि ऊपर के पढ़े-लिखे वर्ग से सर्वथा कट गई। या तो एक नया पाश्चात्य शिक्षित वर्ग आ गया या पुराना शिक्षित समाज परम्परा के एक संकीर्ण दायरे में सिमट गया।

(iv) आजादी के बाद ऊपर का वर्ग धीरे-धीरे और पश्चिम की ओर मुड़ता गया (नब्बे के दशक से यह और तेज हो गया है), तो दूसरी ओर राजनीति और बाजार का प्रभाव नीचे के समाज पर अधिकाधिक असर डालने लगा। शोषण-उत्पीड़न की पुरानी व्यवस्था में नए आयाम जुड़ गए हैं। ऐसे समय में सभ्यता और विचार के संकट का गंभीर रूप धारण करना अस्वभाविक नहीं। इसलिए कार्यक्रमों के निर्धारण में सभ्यता के सवालों के साथ वैचारिक विश्लेषण को शामिल करना जरुरी है, जो राजनीति-अर्थव्यवस्था में सीमित नहीं की जानी चाहिए। कलाकारों की संवेदना यदि इन बातों-सवालों-

द्विविधाओं को नहीं छुए तो वह नई अंतर्दृष्टि नहीं दे सकती। ऐसा समय राजनीति से ज्यादा संस्कृतिकर्म के लिए उपयुक्त होता है।

(v) हाल के दिनों में पुराने मुद्दों के साथ कई तरह के नए मुद्दे उभर रहे हैं– जैसे पर्यावरण का मुद्दा, विकास की राजनीति या नई प्रौद्योगिकी और नई अधिकार चेतना से जुड़े नए सवाल। कला और साहित्य की दुनिया में इन पर कम चर्चा हुई है और मानवीय संवेदना के संदर्भ में इनके बारे में हमारी समझ अधूरी है जबकि नई पीढ़ी इनसे कहीं ज्यादा परिचित हो चुकी है, कम से कम सूचना के स्तर पर। इसकी गहरी कला-संदर्भित जाँच की जरुरत व गुंजाइश है।

(vi) रंगमंच अभी भी एक प्रभावी माध्यम है, गीत-संगीत का अपना असर होता है, अन्य कला विधाएँ भी हमारी सोच और संवेदना को सँवारती हैं। गाँव-देहात में आज भी लोक गीत व अन्य लोक कलाओं की माँग जिन्दा है। उनसे कैसे जुड़ें, उनसे कैसे सीखें– ऐसे सवालों का उत्तर वहाँ पहुँचकर ही मिलेगा। अभी भी वहाँ भी लोक कलाकार हैं, जो आमंत्रण का इंतजार भी कर रहे हैं, जिनकी पहचान मिट रही है जिसे वे बचाना चाहते हैं। लोकगीत या अन्य प्रचलित कुछ कलाविधाओं का संकलन, स्थानीय पुस्तकालय-सह-गतिविधि केन्द्रों में उन पर बहस और प्रशिक्षण द्वारा पारम्परिक लोककलाओं को फिर से जीवन्त बनाया जा सकता है।

संभावनाएँ ढेर सारी हैं, मगर उन्हें पाने के लिए जिस धीरज, लगन की जरुरत है उसकी कमी खलती है। इसमें बाजार या कैरियर की अनिश्चितताओं के साथ-साथ हमारे प्रयास के अभाव, समझ की सीमा और सामान्य लोगों पर भरोसा न कर पाने की प्रवृति है। यदि हम शहरों से कस्बों-गाँवों तक जाएँ, मध्य वर्ग से नीचे भी पहुँचे, टीवी या लोकप्रिय या शास्त्रीय बड़े कलाकारों के अलावा लोक कलाकारों की प्रतिभा में भी झांकें, तो हमारा दायरा बढ़ेगा, सोच खुलेगी, नई रचनात्मकता जन्म लेगीं। इन सबके लिए इप्टा से ज्यादा उपयुक्त कोई प्लैटफार्म आज तक कोई दूसरा नहीं बना है। इस परम्परा को आगे बढ़ाकर ही हम आज भी अपना सांगठनिक अभीष्ट पा सकते हैं। समाज को आज एक नया सांस्कृतिक आन्दोलन चाहिए, मगर उसे सचमुच जन स्तर पर जाना होगा। चुनौतियाँ बड़ी हैं और कई स्तर पर किंतु संस्कृति का धरातल इससे निबटने के लिए सबसे उपयुक्त है।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 25, अंक 3, दिसंबर 2018

वैश्वीकरण के युग में शैक्षिक सुधार
परिचर्चा क्या शिक्षक विहीन रहेगी?#

मनीषा प्रियम*

सारांश

विगत चौथाई शताब्दी के दौरान शिक्षा क्षेत्र में सुधारों की एक लहर दुनिया में चल पड़ी है। यह विकास पर विमर्श में शिक्षा (मुख्य रूप से प्राथमिक) पर सर्वाधिक बल देती है। सामूहिक शिक्षा का प्रावधान और सभी के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, एमडीजी और एसडीजी में व्यक्त विकास के स्पष्ट उद्देश्यों के साथ विश्व बैंक जैसी दानदाता एजेंसियों की शिक्षा क्षेत्र की कार्य नीतियाँ भी हावी हैं। यह प्रतीत होता है कि नीतिगत सहमति भी विद्वानों के लेखन द्वारा समर्थित है, और इससे सार्वभौमिकता की आभा पैदा होती है। यह लेख हालांकि, इस नीति के विमर्श के कुछ महत्वपूर्ण विवादों को सामने लाता है- सीखने पर जोर देते हुए यह विमर्श 'शिक्षण' और 'शिक्षकों' की अनदेखी करता है- जैसे कि शैक्षिक सुधारों पर वैश्विक विमर्श अपने उद्देश्यों को शिक्षकों के बिना प्राप्त कर लेंगे।

जबकि नीतिगत साहित्य की एक ऐसे धूम है जो सीखने की उपलब्धियों और उनकी वैश्विक तुलनाओं, शिक्षक की जवाबदेही और वैश्विक लीग तालिकाओं (जैसे कि PISA तथा TIMSS) की 'उच्च प्रदर्शनकारी शिक्षा प्रणालियों' में 'क्या कारगर है' की वकालत करते है, जो यह सुझाते हैं कि अच्छी गुणवत्ता वाले शिक्षक शैक्षिक परिवर्तन के लिए महत्वपूर्ण हैं, उन्हें आसानी से नजरअंदाज कर दिया जाता है। शिक्षक तैयारी के लिए कार्यक्रमों का कम वित्तपोषण और यहां तक कि शिक्षण के लिए कमतर या अपर्याप्त योग्यता वाले शिक्षकों को काम पर रखने की नीतियों को अपनाना इससे जुड़ा एक संबंधित परिणाम है। भारतीय मामले को उजागर करते हुए विशेष रूप से

#(आगामी पुस्तक अध्याय में रज्जाक अज्रा, पद्म सारंगपाणि और मनीष जैन (संपादित) शिक्षा, शिक्षण और अधिगम: प्रवचन, संस्कृतियाँ और बातचीत, ओरिएंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली)

* सह-प्रोफेसर, नीपा, नई दिल्ली, ई-मेल priyam.manisha@gmail.com

इसे चित्रित किया गया है। जबकि शिक्षण पेशे की पदावनति राजनीतिक रूप से निर्देशित नीतिगत चेष्टाओं के कारण होती है, विद्वतापूर्ण साहित्य शिक्षक की, विशेष रूप से उनकी यूनियनों के लिए 'राजनीतिकृत' छवि को बढ़ावा देने में चयनशील है। संक्षेप में, शैक्षिक सुधारों पर वैश्विक विमर्श एक संकीर्ण तकनीकी लोकतांत्रिक तर्क संगतता के आधार पर परिवर्तन की वकालत करता है, जो शिक्षा में जवाबदेही और लेखा परीक्षा की संस्कृति को बढ़ावा देता है, और शिक्षकों को एक महंगे संसाधन के रूप में 'संदिग्ध रूप से' देखता है। यह संकीर्ण तर्क संगतता शैक्षिक परिवर्तन के विचार को केवल बाजार और दक्षता के तर्क तक सीमित कर देती है।

सीखने के प्रयास के केंद्र के रुप में शिक्षण पर बहस करना और इसे स्थापित करना भी एक विकल्प है। जॉन डेवी के विचारों के आधार पर 'चिंतन करना सीखना'और 'चिंतन करना सिखाना' न केवल व्यावसायिक परिवर्तन की प्रक्रिया का नेतृत्व करने वाले पेशेवर शिक्षकों के कैडर को पुनर्जीवित करने के संभावित मार्ग को सुझाता है, अपितु यह स्कूली शिक्षा के लिए वैश्विक सुधारों के एजेंडे के केंद्र में 'शैक्षिक' पुनर्गठन को भी सुझाता है।

प्रमुख शब्दः विकास और शिक्षा, शैक्षिक नीति सुधार, शिक्षा में वैश्विक अभिशासन, उच्च प्रदर्शनकारी शिक्षा प्रणालियाँ, जॉन डेवी, अधिगम गुणवत्ता, ओइसीडी और शिक्षा, शिक्षक जवाबदेही, शिक्षक नीतियाँ, शिक्षक गुणवत्ता, शिक्षक युनियन, पी.आई.एस.ए. परीक्षण, पैरा–शिक्षक, शिक्षण चिंतन, विश्व बैंक और शिक्षा।

1990 के दशक में जोमेटिन में उल्लेखनीय अभिसरण के बाद से लगभग एक चौथाई सदी तक, शिक्षा नीति और विकास पर वैश्विक विमर्श को ''सभी के लिए शिक्षा'' (ई.एफ.ए.) का लक्ष्य को प्राप्त करते हुए रेखांकित किया गया है। यह मानते हुए कि शिक्षा एक बुनियादी मानवीय आवश्यकता है, इसकी उपलब्धि को संयुक्त राष्ट्र के *यूनिवर्सल डिक्लेरेशन ऑफ ह्यूमन राइट्स (यूडीएचआर)* की खोज और प्राप्ति के रूप में देखा गया है। इसके बाद, वर्ष 2000 में संयुक्त राष्ट्र सहस्राब्दी शिखर सम्मेलन में दुनिया के नेताओं द्वारा अपनाए गए सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्यों (एम.डी.जी.) ने इस महत्व को जारी रखा, सभी के लिए ''सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा'' का आह्वान किया जिसे वर्ष 2015 तक प्राप्त किया जाना था। विकास और नीतिगत प्रयास के लिए इस लक्ष्य को निर्धारित समय सीमा में प्राप्त करना चरम भूख और गरीबी के उन्मूलन के लक्ष्य के बाद दूसरी प्राथमिकता थी। निर्धारित समय सीमा में इन लक्ष्यों की गैर–उपलब्धि के कारण

वर्ष 2030 तक 'गुणवत्तापूर्ण शिक्षा' प्राप्त करने के सतत विकास लक्ष्यों (एस.डी.जी.) को अपनाया गया। विकास विमर्श के भीतर शिक्षा पर ध्यान केंद्रित करने की इस प्राथमिकता को बुद्धिजीवी चिंतन में एक महत्वपूर्ण मोड़ द्वारा प्रभावित किया गया। चिंतन, मानव विकास के बारे में और अकेले आर्थिक विकास के बारे में नहीं, क्षमताओं के संवर्द्धन के रूप में विकास के बारे में वे क्या करना चाहते हैं और इसको महत्व देना कि वे क्या बनना चाहते हैं'। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री अर्मत्य सेन और महबूब-उल-हक के लेखन से प्रेरित, मानव विकास का प्रतिमान आर्थिक और उपयोगितावादी मापदंडों पर विकास और कल्याण के बारे में सोचने से दूर एक विवर्तनिक बदलाव के लिए जिम्मेदार था। गरीबी केवल आय की कमी के बारे में नहीं थी, बल्कि क्षमता में कमी - विशेष रूप से स्वास्थ्य और शिक्षा के सामाजिक अवसरों की कमी थी।

इस प्रकार विद्वतापूर्ण समुदाय और नीति में सर्वसम्मति उभरी है, विकासशील देशों में दानदाताओं, विकास अभिकरण और राष्ट्रीय सरकारों तथा इसी अनुक्रम में संगठित उप-राष्ट्रीय और स्थानीय शैक्षिक नौकरशाही और सिविल सोसायटी में कार्यरत गैर-सरकारी संगठनों में भी यह सर्वसम्मति उभरी है; यह ई.एफ.ए., एम.डी.जी. और एस.डी.जी. के विकास लक्ष्यों को आगे बढ़ा रहे हैं, जिससे कि मानव पूंजी में वृद्धि के बजाए मानव विकास को बढ़ावा मिल रहा है। सार्वभौमिक पहुंच और समयबद्ध तरीके से गुणवत्तायुक्त अधिगम ने राज्य नीति के उद्देश्य के रूप में शैक्षिक सुधारों की एक नई लहर चला दी है। दुनियाभर में व्यापक नीति परिवर्तन ने न केवल शैक्षिक क्षेत्र की दक्षता में सुधार पर बल दिया है। बल्कि विश्वस्तर पर तुलनात्मक उत्पादन के रूप में (विश्व बैंक, 2011) सभी के लिए सीखने पर भी बल दिया है।

ऐतिहासिक प्रक्षेप-पथ, संस्थागत संरचनाओं और शिक्षण और सीखने के सांस्कृतिक संदर्भों में अंतर के बावजूद, सीखने के प्रतिफलों में-विश्व स्तरीय गुणवत्ता प्राप्त करने पर नीतिगत महत्व की अचानक वृद्धि हुई। शैक्षिक सुधार तेजी से एक देश की वैश्विक प्रतिस्पर्धा में सुधार करने के साधन के रूप में चित्रित किए जाते हैं। अंतरराष्ट्रीय अनुसंधान और विचार-मंचों की एक विशाल सारणी, अब यह सोचने में सहायता करती है कि उच्च प्रदर्शनकर्ता 'कैसे बनें और क्या कारगर है'। आश्चर्यजनक रूप से, शिक्षकों की आवाज और शिक्षण प्रक्रिया शैक्षिक परिवर्तन के बारे में इस वैश्विक सोच के लिए परिधीय दिखाई देती है।

इस लेख में शिक्षा नीति सुधारों के इस मौजूदा चरण के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं पर ध्यान दिया गया है, जहाँ सभी के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा पर जोर दिया जा रहा है।

शिक्षण को गैर-व्यावसायिक गतिविधि के रूप में देखा जाता है, जो मानकीकृत प्रदर्शन इनपुट तक ही सीमित है, जो मात्र एक कौशल है जिसे विषय-वस्तु पर एक उचित जोर के बिना तकनीकी रूप से दोहराया जा सकता है। विलेगस-रीमर्स और फर्नांडो रीमर्स जैसे नामी अकादमिक यह नोट करते हैं कि न केवल परिवर्तन के बारे में सोच में शिक्षक आवाजें गायब हैं, इनमें से कुछ नीतियां- 'शिक्षक-प्रूफ' नवाचारों की वकालत करती हैं– जो ''शिक्षक विहीन'' बदलाव के लिए प्रेरणा को बनाए रख सकते हैं (1996: 469)।

इन सुधार प्रस्तावों में एक संकीर्ण तकनीकी तर्क निहित है तथा शिक्षकों को एक महंगा आपूर्ति-पक्ष निवेश माना जाता है। शिक्षक की तैयारी के लिए लागत कम करने हेतु, कार्यक्रमों के वित्तपोषण में कमी की आवश्यकता होती है। शिक्षक की गुणवत्ता में सुधार में निवेश की उपेक्षा और कम गुणवत्ता, कम-महंगे शिक्षकों को काम पर रखने के लिए यह एक बदलाव के रूप में देखा गया; जबकि राजनीतिक सिद्धांत इन नीति निर्देशों को निर्धारित करते हैं, अब प्रचुर मात्रा में विद्वानों का साहित्य है जो शिक्षकों पर दोष डालता है। उन्हें विकासशील दुनिया में प्रचलित संरक्षण लोकतंत्रों में 'राजनीतिकृत' कर्त्ताओं के रूप में देखा जाता है (बेतेल 2009)। बेतेल राजनेता और शिक्षक के बीच के इस आरोपित संबंध को ''भारतीय लोकतंत्र की गहन रूप से अंतर्निहित संरचनात्मक समस्या'' मानते हैं (2009: 9)। ये अकादमिक लेखन शिक्षकों को सामूहिक कार्य के लिए विशेष रूप से आलोचनात्मक हैं, क्योंकि यह केंद्रीयकृत नौकरशाही के भीतर मजदूरी का मोल-तोल करने तक ही सीमित हैं। हैरानी की बात यह है कि ऐसे विनाशकारी प्रभावों पर बहुत कम विश्लेषणात्मक विद्वता है जो नीतियों के कारण सीखने की गुणवत्ता पर हो सकती है, जो कि अपर्याप्त योग्य शिक्षकों को काम पर रख कर शिक्षक की लागत में कटौती की वकालत करते हैं, और विषय वस्तु और शिक्षा शास्त्रीय प्रशिक्षण के माध्यम से शिक्षक तैयारियों पर बहुत कम निवेश करते हैं।

इसलिए, यहां तक कि शैक्षिक सुधार भी बहुत कुछ करने का दावा करते हैं, सार्वभौमिकता के विकास के उद्देश्यों को प्राप्त करने और सीखने की गुणवत्ता में सुधार, शिक्षक लागत में कटौती और शिक्षण प्रक्रिया को कुछ मात्रात्मक मैट्रिक्स तक सीमित करने के लिए नीतिगत कोशिशें जिसके परिणामस्वरूप शिक्षण के गैर-व्यावसायिकरण का दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम सामने आया है। यह तेजी से एक यांत्रिक-कुशल गतिविधि बनकर रह जाता है, जहां सिद्धांत में अधिक महंगे शिक्षकों को कम खर्चीले शिक्षक द्वारा बदला जा सकता है।

तब परिवर्तन की एक प्रमुख एजेंसी के रूप में शिक्षक के साथ शैक्षिक परिवर्तन की प्रक्रिया को स्थापित करने के सिद्धांत क्या हैं? यह लेख दो तरीकों से इस प्रश्न का

उत्तर देने का प्रयास करता है; यह शिक्षण और शिक्षकों के नजरिए से विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्धी सीखने की गुणवत्ता प्राप्त करने के लिए मौजूदा नीतिगत नुस्खों की कुछ किस्मों की स्पष्ट आलोचना से शुरू होता है। इसके अलावा, यह विद्वानों के साहित्य के साथ गंभीर रूप से जुड़ता है जो शिक्षक को एक 'राजनीतिकृत' कर्त्ता के रूप में निर्मित करता है और इसके लिए संदर्भ सान्निहित एक बड़े संज्ञान हेतु तर्क दिया जाता है जिसमें शिक्षण और अधिगम होता है। शिक्षक का यह 'राजनीतिक' निर्माण एक स्मोक-स्क्रीन के रूप में काम करता है जिसके पीछे निम्न गुणवत्ता वाले, अल्प-प्रशिक्षित शिक्षकों की भर्ती के लिए नीतियां और शिक्षक की तैयारी में कम-निवेश बिना जांच के निकल जाते हैं। इसके अलावा भी भारत जैसे विकासशील देशों के संदर्भों से क्षेत्र की वास्तविकता, अधिक से अधिक व्यावसायीकरण की आवश्यकता को इंगित करती है, और शिक्षकों और शिक्षक प्रबंधन नीतियों पर राजनीतिक और नौकरशाही नियंत्रण को कम करती है, जबकि नीतिगत कार्य की दिशा और मंशा अन्यथा बनी रहती है।

लेख का दूसरा भाग भारतीय मामले के प्रति अपने महत्वपूर्ण अवलोकन को निर्देशित करता है जहां नीतिगत बदलावों ने शिक्षक भर्ती, शिक्षक की तैयारी और छात्रवृत्तियों के लिए मानदंडों को कम करने की स्थिति को सामान्य बना दिया है और जिसने शिक्षकों के राजनीतिकरण को मजबूत बना दिया है।

अंतिम भाग इस सवाल का जवाब देने का प्रयास है कि हम किस तरह शैक्षिक परिवर्तन के बारे में सोचना शुरू कर सकते हैं जिसमें 'शिक्षण' सीखने के लिए केंद्र बन जाता है। यहाँ मुझे लगता है कि जॉन डेवी के विचार शिक्षण को व्यावसायिक बनाने और सीखने के प्रयास दोनों के लिए एक संभव मार्ग प्रदान करते हैं। जैसा कि डेंग (2001) ने जॉन डेवी के विचारों का उपयोग करते हुए नोट किया कि क्या 'चिंतन सीखना' और 'चिंतन सिखाना' एक बौद्धिक ढांचा प्रदान करता है जिसके भीतर हम शैक्षिक परिवर्तन के बारे में सोचते हैं। यह एक कम-गुणवत्ता वाली कुशल गतिविधि के लिए व्यावसायिक शिक्षण का मूल्य घटाने और कुछ पूर्वरूपित, सामान्य तकनीकों के लिए शैक्षिक प्रक्रिया को सीमित करने का भी एक प्रत्युत्तर है। शिक्षकों की भर्ती में खराब गुणवत्ता और उनके प्रशिक्षण और शिक्षण के लिए तैयारी के बारे में विचार के अभाव के साथ, वैश्विक नीतिगत परिवर्तनों की निश्चयता राजनीतिक या वैचारिक रूप से तटस्थ नहीं है।

शैक्षिक सुधार और लापता शिक्षकों के लिए वैश्विक नीतियां

विश्व बैंक एक 'ज्ञान बैंक' के रूप में, दुनिया भर में शैक्षिक नीति बनाने को प्रभावित करने, और प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में निवेश करने की अपनी क्षमता के साथ और देश के

शैक्षिक प्रदर्शन के मापक के रूप में पीआईएसए की नाटकीय सफलता को 'वैश्विक शिक्षा शासन' के सबसे महत्वपूर्ण तत्व (मेयर और बेनावोट, 2013: 10) के रुप में एक साथ देखा जा सकता है। यहाँ प्रस्तुत विचारों का इस बात पर प्रभाव है कि राष्ट्र किस तरह से, विशेष रूप से विकासशील देशों में, अपनी सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली को पुन: प्राप्त करते हैं और इसे अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुकूल बनाते हैं। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि इस तरह के अंतरराष्ट्रीय संगठनों का प्रभाव है कि राज्य संप्रभुता और नीति निर्माण के मामलों को शिक्षा में वैश्विक शासन की सत्ता द्वारा प्रतिस्थापित किया और चलाया जाता है। दोनों को एक साथ लेते हुए ऐसा लग सकता है कि नीतियों के आकस्मिक संग्रह पर चर्चा करने के बाद, यह स्पष्ट है कि दोनों में बहुत कुछ समान है – सीखने पर ध्यान केंद्रित करना, और एक मीट्रिक के रूप में सीखने को मापने के आधार पर, जिसके लिए जवाबदेही और दक्षता को डिफॉल्ट और मानकीकृत पैकेज के रुप में निर्धारित किया जा सकता है। रोचक बात यह है कि शिक्षक उस सोच के केंद्र में नहीं हैं, जो डब्ल्यू.बी.ई.एस. 2020 या ओ.ई.सी.डी. के पी.आई.एस.ए. में उल्लिखित है। अब मुख्य सिद्धांत व इसके व्यावहारिक निहितार्थ पर चर्चा प्रस्तुत है:

विश्व बैंक शिक्षा क्षेत्र कार्यनीति 2020: सभी के लिए अधिगम

शिक्षा और विकास में वर्तमान विश्वदृष्टि को आकार देने में प्रमुख विश्व बैंक शिक्षा कार्यनीति 2020 (डब्ल्यू.बी.ई.एस. 2020) – सभी के लिए अधिगम: विकास को बढ़ावा देने के लिए लोगों के ज्ञान में निवेश करना (विश्व बैंक 2011)। इस दस्तावेज में जो सोच रखी गई है, वह वैश्विक परामर्श का एक परिणाम है और इसकी बहुत व्यापक पहुँच है; प्रमुख देशों द्वारा वार्ता और निर्णय में विचार एक 'महत्वपूर्ण संदर्भ' हैं (क्लेस, सैमॉफ और स्ट्रोमक्विस्ट (सं. 2012): xv)। इस कार्यनीति दस्तावेज में 'गुणवत्ता' की वकालत और इस गुणवत्ता के प्रमुख मीट्रिक के रूप में सीखने के लाभ पर जोर इस कार्यनीति नोट की महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं, विशेष रूप से 1995 और 1999 के पूर्व के बैंक शिक्षा क्षेत्र कार्यनीति शोधपत्रों की तुलना में।

जबकि बुनियादी विकास के क्षेत्र में मुख्य रूप से बैंक के काम पर ध्यान केंद्रित किया गया था, विकास के विमर्श में बदलाव के साथ-साथ बुनियादी शिक्षा के लिए प्राथमिकता के साथ शिक्षा प्राथमिकता ऋण देने के क्षेत्र के रूप में उभरा। आज इसे सभी शिक्षा क्षेत्रों (जैप, 2017: 1) को कवर करने वाली दुनिया की सबसे बड़ी वित्तपोषक संस्था के रूप में मान्यता प्राप्त है। एक ज्ञान बैंक के रूप में यह एजेंडा शिक्षा में निर्धारण और नीति रूपरेखा पर बहुत बड़ा प्रभाव रखता है। इन कारणों से, जैप (2017: 9)

शैक्षिक शासन में बैंक को 'महामारी कर्त्ता' कहता है। विद्वानों ने शिक्षा के क्षेत्र में विश्व बैंक के पहले कार्यनीति शोधपत्रों के बीच बहुत अधिक निरंतरता देखी- 1995, 1999- परन्तु डब्ल्यू.बी.ई.एस. 2020 पहले वालों (डी सिकीरा, 2012) से भिन्न हैं।

डब्ल्यू.बी.ई.एस. 2020 का मानना है कि शिक्षा - वृद्धि और विकास के लिए मूलभूत है, यह एक बुनियादी मानव अधिकार है जैसा कि यूडीएचआर में लिखा गया है। परन्तु आगामी नीतिगत निहितार्थों के साथ सबसे महत्वपूर्ण वैचारिक बदलाव यह है कि अब जो बात महत्वपूर्ण है वह है सीखना न कि स्कूली शिक्षा के वर्ष पूरे करना। प्रतिफल दर के विश्लेषण में यह सीखने का स्तर है जिसे अब आर्थिक वृद्धि का सबसे अच्छा पूर्वानुमान माना जाता है। कोलिन्स और वाइजमैन के साथ-साथ स्टीनर-खाम्सी नोट करते हैं कि व्यापक परामर्श और अनुमोदन के बाद बनाई गई डब्ल्यू.बी.ई.एस. 2020 विश्व बैंक की आधिकारिक नीति (पृष्ठ -) होने का भार वहन करती है। जबकि विश्व बैंक और शिक्षा में इसके हस्तक्षेपों के नव-उदारवादी एजेंडे (उदाहरणत: कामथ 2012; कोलक्लो 1996; हिंचक्लिफ 1993) से निकटता के लिए इसकी आलोचना की गई है, परन्तु यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि डब्ल्यू.बी.ई.एस. 2020 द्वारा परिणाम उन्मुख शिक्षा सुधारों की वकालत की गई है जो सीखने के लिए उन्मुख है और बाद में अक्सर 'अधिग्रहीत कौशल' के रूप में संदर्भित है। कामथ (2012: 39) नोट करते हैं कि स्कूलों, पाठ्यचर्या या शिक्षकों के संदर्भ के बिना ''सीखने'' पर जोर सरकारों और अंतरराष्ट्रीय संगठनों को गुणवत्ता औपचारिक शिक्षा की विशेषता को कम करने की अनुमति देता है। यह अलग है और एम.डी.जी. गुणवत्ता औपचारिक शिक्षा तक पहुंच का विस्तार करने में समर्थित ई.एफ.ए. मिशन के विपरीत है। लोकतांत्रिक, समान विकास हासिल करने के लिए यह महत्वपूर्ण है। लंबे समय में, यह उन लोगों के बीच असमानता बढ़ाएगा जो औपचारिक शिक्षा प्राप्त करते हैं और जो नहीं करते हैं, जो विशेष रूप से श्रम बाजार के परिणामों के रूप में दोनों के लिए अलग-अलग होंगे। औपचारिक स्कूली शिक्षा की प्रतिबद्धता पर खरा नहीं उतरकर बैंक ई.एफ.ए. और राष्ट्रपति वोल्फेंसन द्वारा स्थापित फास्ट ट्रैक पहल के लिए अपनी प्रतिबद्धताओं पर खरा नहीं उतर रहा है। क्लेस (2012: 52) नोट करते हैं कि यहां तक कि ''सभी के लिए सीखने'' का विषय वास्तविकता में बहुत संकीर्ण - ''सभी के लिए परीक्षण'' भी है। वास्तविकता में, सभी देशों को पढ़ने और गणित में अपने छात्रों का परीक्षण करने के लिए मजबूत कर दिया जाएगा - ज्ञान, नागरिकता और लोकतंत्र के लिए स्कूली शिक्षा के व्यापक परिणामों की उपेक्षा के लिए। समलोचनात्मक चिंतन सीखना ऐसा है, जिसे परीक्षण के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

जैसा कि डी सिक्येरा नोट करते हैं कि डब्ल्यू.बी.ई.एस. 2020 शैक्षिक विकास के स्तरों में भिन्नता के आधार पर देशों के वर्गीकरण में 'वन साईज फिट्स ऑल' का सिद्धांत साथ चलता है। यहां, डी सिक्येरा डब्ल्यू.बी.ई.एस. 2020 (विश्व बैंक 2011, पृष्ठ 2) का हवाला देते हैं- शैक्षिक विकास के निम्न स्तर वाले देश तकनीकी ठहराव, कम विकास और शिक्षा की कम मांग के जाल में रहते हैं।

डब्ल्यू.बी.ई.एस. 2020 में प्रोत्साहित किए गए ''सिस्टम असेसमेंट एंड बेंचमार्किंग फॉर एजूकेशन रिजल्ट्स (एस.ए.बी.ई.आर.) में शिक्षक पर एक दस्तावेज है, जो ''कोर टीचर पॉलिसी लक्ष्यों'' का उल्लेख करता है, जिसके लिए सभी शिक्षा प्रणालियों को लक्ष्य बनाना चाहिए और यह बदले में ''प्रभावी शिक्षकों'' का उत्पादन करेगा। । डी सिक्येरा नोट करते हैं कि डब्ल्यू.बी.ई.एस. 2020 (2012: 78) के ''वन साइज फिट्स ऑल'' दृष्टिकोण का एक और उदाहरण है। आठ नीतिगत लक्ष्यों का सारांश पढ़ने से शिक्षक के काम की निगरानी, प्रदर्शन पर जोर देने और शिक्षण को एक कुशल गतिविधि तक सीमित होने की नीति निश्चयता स्पष्ट हो जाती है। हालांकि यह 'शिक्षण में सर्वश्रेष्ठ को आकर्षित करने' का उल्लेख करता है, वास्तविकता में यह बहुत कम है, ऐसा तब हो सकता है जब शिक्षण का पेशेवरीकरण विचार-विमर्श के तहत हो।

वोंगालिस-मैक्रो (2012), नीति निर्माण और कार्यान्वयन प्रक्रिया में शिक्षक और व्यावसायिक प्रशिक्षकों के बहिष्करण पर ध्यान देता है। उसके लिए बैंक की शैक्षिक नीतियों (डब्ल्यू.बी.ई.एस. 2020 और उससे पहले) में शिक्षक के दृष्टिकोण और शिक्षकों की मांगों को शामिल न करना, शैक्षिक परिवर्तन की दृष्टि से नीति के कार्यान्वयन की पूरी क्षमता को सीमित करता है। शिक्षण-अधिगम को मात्र कौशल में सीमित करने में, परीक्षण पर अत्याधिक जोर देने और औपचारिक विद्यालयों और शिक्षकों की अनदेखी करने में, इतिहास और राजनीति की अनदेखी करने वाले तकनीकी दृष्टिकोण ''वन साइज फिट्स ऑल'' में डब्ल्यू.बी.ई.एस. 2020 के विश्लेषण और सिफारिशें दोनों सीखने के लिए नकारात्मक परिणामों के साथ छात्रों, शिक्षकों और समुदायों को कमजोर करने के रूप में (डी सिक्येरा 2012: 69) देखी जाती हैं। गिन्सबर्ग (2012) भी डब्ल्यू.बी.ई.एस. 2020 में सभी के लिए सीखने पर विमर्श के हिस्से के रूप में शिक्षक अधिगम पर फोकस के अभाव को नोट करते हैं। शिक्षक स्वयं के लिए ऐसी कोई स्थिति अस्तित्व में नहीं होने पर सीखने के माहौल को सृजित या बनाए नहीं रख सकते हैं।

पी.आई.एस.ए.: परीक्षण अधिगम, उच्च प्रदर्शनकारी शैक्षिक प्रणालियाँ सृजित करना।

आर्थिक सहयोग और विकास संगठन (ओ.ई.सी.डी.) प्रोग्राम फॉर इंटरनेशनल स्टूडेंट असेसमेंट (पी.आई.एस.ए.) के माध्यम से छात्र अधिगम आकलन का आज जबरदस्त महत्व है, और वास्तव में मेयर और बेनापोट (2013: 10) अंतर्राष्ट्रीय शैक्षिक विमर्श के आकार पर इसे एक 'कार्यनीतिक प्रभाव' कहते हैं। यह ध्यान रखना रोचक है कि ओ.ई.सी.डी. कोई विशिष्ट शैक्षिक अधिदेश वाला संगठन नहीं है, लेकिन वर्ष 2000 के बाद से, पढ़ने, गणित और विज्ञान में बुनियादी सीखने की क्षमता का परीक्षण और फिर इस आधार पर देशों की रैंकिंग द्वारा एक प्रकार की 'लीग टेबल' का निर्माण करने से स्कूल प्रणालियों में विश्व स्तर की प्राप्ति के लिए एक अभूतपूर्व होड़ सी पैदा हुई है। दूसरे विश्व युद्ध के बाद स्थापित- यूरोप, अमेरिका और कनाडा से ओ.ई.सी.डी. सदस्य दुनिया के सबसे अमीर देशों में से हैं। इसका अधिदेश बाजारों के कामकाज की सुरक्षा और बढ़ावा देना है। पी.आई.एस.ए. परीक्षण ओ.ई.सी.डी. द्वारा सदस्य और गैर-सदस्यों[1] दोनों देशों द्वारा लिया जाता है - परीक्षण के लिए देशों द्वारा भुगतान किया जाता है और ओ.ई.सी.डी. द्वारा इसका प्रशासन किया जाता है। जबकि पी.आई.एस.ए. से पहले भी विकसित देशों में शैक्षिक परीक्षण एक महत्वपूर्ण गतिविधि थी, हाल के वर्षों में विकासशील देशों द्वारा महत्वपूर्ण भागीदारी देखी गई है। लॉकहीड (2013) विकसित राष्ट्रों की प्रेरणा में अंतर को उजागर करता है - अपनी शिक्षा प्रणालियों को दूसरों के साथ तुलना करके सुधारने के लिए, जबकि विकासशील देशों को बाहरी एजेंसियों और दानदाताओं द्वारा ऐसा करने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। ओ.ई.सी.डी., विश्व बैंक और यू.एन.डी.पी. से वित्तीय और तकनीकी सहायता और बढ़ी हुई सहायता-प्रभावशीलता को देखने की इच्छा दानदाता एजेंसियों को परीक्षण को आगे बढ़ाने के लिए एक महत्वपूर्ण प्रेरक रही है।

इसके परिणामों का उपयोग शैक्षिक प्रणालियों में अंतर-राष्ट्रीय विविधताओं को समझने के लिए किया जाता है और ऑडिट, जवाबदेही और दक्षता पर जोर देने के साथ सुधार के लिए मानकीकृत पैकेजों को निर्धारित किया जाता है। एक अर्थ में, परीक्षण और इसके परिणामों को दुनिया की स्कूल प्रणालियों की अड़चक को बाजारों में लागू दक्षता के तर्क के रूप में देखा जाता है। जबकि पी.आई.एस.ए. ने सीखने का और इस आधार पर राष्ट्रीय प्रदर्शन को न्यूनतम मानदण्ड का डाटा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध करवाया है, इसके अभाव में शिक्षकों की आवाज और भूमिका अप्रकट है। पृष्ठभूमि प्रश्नावली शिक्षकों के बारे में कुछ जानकारी देने के लिए स्कूल प्रशासकों पर निर्भर रहती है, शिक्षा

[1] वर्ष 2015 में, 72 देशों ने भाग लिया, जिसमें 35 ओईसीडी सदस्य देश थे तथा 37 गैर-सदस्य देश थे।

के महत्वपूर्ण कर्त्ताओं द्वारा यह लापता जानकारी, इस आधार पर वैचारिक और सैद्धांतिक ज्ञान के निर्माण के प्रयासों में एक गंभीर कमी है। लॉकहीड (2013) के लिए, हालांकि, पी.आई.एस.ए. में बढ़ी हुई भागीदारी के परिणाम ज्यादातर सकारात्मक रहे हैं, जिससे विकासशील देशों को अपने स्वयं के राष्ट्रीय आकलन प्रणालियों को मजबूत करने में समर्थ बनाने हेतु मदद मिली है, उनकी अपनी मानव पूंजी का और शिक्षकों के व्यावसायिक विकास के लिए क्षमता विकसित करने का बेहतर अनुमान है।

देशों की पी.आई.एस.ए. रैंकिंग का एक परिणाम 'शीर्ष प्रदर्शनकर्त्ताओं' उच्च प्रदर्शन शिक्षा प्रणाली (एच.पी.ई.एस.), और एच.पी.ई.एस. में 'क्या कारगर है' पर केंद्रित रहा है। निश्चित रूप से एच.पी.ई.एस. पर ध्यान केंद्रित करने की आलोचना की जाती है क्योंकि यह इतिहास, संस्कृति और राजनीति के संदर्भ के अंतर को अनदेखा करता है और एक यांत्रिक तरीके से नीति हस्तांतरण को बढ़ावा देता है (डेंग और गोपीनाथन, 2016)। लेकिन सफल प्रदर्शनकारियों को समझने से उत्पन्न होने वाले अन्य उल्लेखनीय मामलों में से एक यह है कि मानकीकरण, केंद्रीकृत परीक्षण और परीक्षण की अनदेखी के सुधारों के लिए पी.आई.एस.ए. कथानक फिनलैंड की कहानी नहीं रही है जो कि – 2000 पी.आई.एस.ए. सर्वेक्षण के सबसे उच्च प्रदर्शन के बारे में सर्वाधिक चर्चित में से है।

यह ध्यान रखना रोचक है कि 'शीर्ष प्रदर्शनकारी', फिनलैंड का मामला (जिसने 2000 में पी.आई.एस.ए. लीग तालिकाओं का नेतृत्व किया था) को जवाबदेही से संचालित रवैये और सुधार पैकेज, उच्च केंद्रीकृत और निगरानीकृत शिक्षण के कार्य या ज्ञान की सामग्री के रूप में ''आउटपुट'' पर निर्भरता से स्पष्ट नहीं होता है। सिलैंडर और वलिजारवी (2013), नोट करते हैं कि फिनिश मामले का सबसे महत्वपूर्ण पहलू शिक्षकों के उच्च शैक्षणिक मानक और पेशे की लोकप्रियता हैं – जो कि डॉक्टरों और वकीलों के लिए समान है।

एक हस्तांतरणीय नीति निर्धारण के रूप में मानकीकरण, जवाबदेही पर ध्यान केंद्रित करने की गतिविधि और प्रक्रिया के रूप में स्कूल शिक्षण के लिए विशिष्ट निहितार्थ हैं – इसका ज्ञान से पृथक्करण और यह एक पुनः प्रयोज्य कौशल के रूप में पतन है। कोई आश्चर्य नहीं कि पी.आई.एस.ए. में पूर्वी एशियाई 'चमत्कार को अभी भी पाठ्यचर्या सामग्री वितरण और परीक्षा प्रदर्शन' की ओर निर्देशित शिक्षण के पारंपरिक तरीकों से समझाया जा सकता है (डेंग और गोपीनाथन, 2016: 458)। डेंग और गोपीनाथन इसे 'प्रदर्शन संबंधी शिक्षाशास्त्रीय परिपाटी' कहते हैं, जो सामग्री महारत और परीक्षा की

तैयारी के लिए निर्देशित है (2016): 460)। इसके बजाय वे जो वकालत करते हैं, वह रचनात्मक शिक्षाशास्त्र का उपयोग है जैसे कि पूर्व ज्ञान की जांच करना, समझ की निगरानी करना और रचनात्मक फीडबैक करना - यह सब उच्च स्तरीय चिंतन को बढ़ावा देने के लिए है (2016: 459)।

इसके बजाय हम यह देखते हैं कि एच.पी.ई.एस. साहित्य न तो उच्च प्रदर्शन करने वाली फिनलैंड की भूमिका पर ध्यान केंद्रित करता है, न ही शैक्षिक सुधारों को आधार बनाने के लिए शैक्षिक मानदंडों को पूरा करने की आवश्यकता पर, क्योंकि वे 'पूर्व में सिंगापुर को देखते हैं'। यह तब एक सार्वभौमिकृत दुनिया में आर्थिक उत्पादकता की समग्र धारणाओं को शैक्षिक विमर्श का आधार बनाने की अंतिम त्रासदी है - शिक्षा, चिंतन और शिक्षकों को 'सर्वोत्तम परिपाटी' अभ्यास के मानक आयामों के लिए परिधीय हैं। औल्ड और मॉरिस (2016) ने ठीक ही कहा है कि यह विमर्श जटिल परिस्थितियों को हस्तांतरणीय सर्वोत्तम परिपाटी के रूप में प्रतिपादित करता है।

परन्तु क्या है जो न तो डब्ल्यू.बी.ई.एस. 2020 और न ही पी.आई.एस.ए. निर्धारित करता है जो शिक्षक गुणवत्ता को गिरा रहा है - दोनों ही प्रवेश प्रमाणन अपेक्षाओं को कम करके और कौशलों के पक्ष में पाठ्यवस्तुज्ञान पर जोर न देते हुए। यह प्रत्यक्ष राष्ट्र नीति के माध्यम से होता है — लागत को कम करने के नाम पर (शिक्षक एक लागत है), आम जनता को शिक्षा उपलब्ध कराने के नाम पर। विकासशील देशों में शैक्षिक विमर्श को चलाने में वे हावी होती हैं - दोनों ही संसाधनों तक व्यापक पहुँच और वैश्विक सर्वोत्तम परिपाटी के तकनीकी ज्ञान के संबंध में, कम से कम शिक्षकों की खराब गुणवत्ता, शिक्षण प्रक्रिया और गैर-व्यावसायिक बनाने के बारे में इस गंभीर दुर्बलता के संबंध सभी के लिए शिक्षा के सबसे बड़े नीतिगत प्रयास को संबोधित नहीं करता है।

जब भारत के संदर्भ में इन मुद्दों पर कुछ विवरणों पर चर्चा की जाती है, तो यह ध्यान रखना रोचक है कि संयुक्त राज्य अमेरिका ने अल्प-प्रमाणित शिक्षकों को बढ़ावा देने में समूह का नेतृत्व किया है, जो छात्र की उपलब्धि पर हानिकारक प्रभाव भी डाल सकता है (लैक्जो-केर्स तथा बर्लिनर, 2002)। अमेरिका के शिक्षा सचिव की वार्षिक रिपोर्ट, जिसका शीर्षक है ''उच्च योग्यताधारी शिक्षक चुनौती को पूरा करना'', वर्तमान शिक्षक प्रमाणन आवश्यकताओं को ''बोझ'' के रूप में देखता है - और वे वर्तमान शिक्षक प्रमाणन व्यवस्था से थोक में आते हैं। सुधार का उद्देश्य इन ''नौकरशाही बाधाओं'' को दूर करना है, और अंतर्निहित धारणा यह है कि छात्रों की उपलब्धि के लिए शिक्षक मायने रखते हैं, जबकि शिक्षक शिक्षा और प्रमाणन शिक्षक प्रभावशीलता से संबंधित नहीं हैं। इसके

अतिरिक्त शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम पूरा करने वाले शिक्षक अकादमिक रूप से कमजोर हैं, और अपनी नौकरी के लिए कम तैयार हैं। इसके बजाय नीतिगत कथन जो बढ़ावा देता है वह है 'वैकल्पिक प्रमाणन कार्यक्रम' असल में एक पेशे के रूप में शिक्षण को पदावनत करता है (डार्लिंग-हैमोंड और यंग्स, 2002:13)। लाजो-केर्स और बर्लिनर (2002) नियमित रूप से प्रमाणित प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों द्वारा पढ़ाए गए छात्रों के साथ अल्प-प्रमाणित प्राथमिक स्कूल शिक्षक द्वारा पढ़ाए गए छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धियों की तुलना और मूल्यांकन करते हैं। प्रमाणित शिक्षकों द्वारा पढ़ाए गए छात्रों ने अल्प-प्रमाणित शिक्षकों द्वारा पढ़ाए गए छात्रों से बेहतर प्रदर्शन किया (जिनमें प्रसिद्ध 'टीच फॉर अमेरिका' कार्यक्रम के शिक्षक भी शामिल हैं)। इसके अलावा, शिक्षक प्रमाणीकरण के पारंपरिक कार्यक्रमों के परिणामस्वरूप कम आय वाले प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों की शैक्षणिक उपलब्धियों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है (पीपी. 1-2)।

इसके बाद निर्णय के इस क्षण में, 'शिक्षण' के स्थान पर 'सीखने' को रखकर और शैक्षिक सुधार प्रक्रिया के सबसे रचनात्मक एजेंटों को देखते हुए - शिक्षकों को ''बोझ लागत'' के रूप में देखना एक आपूर्ति-पक्ष कर्त्ता है जिसे विकेंद्रीकरण, सामुदायिक प्रबंधन और निगरानी, और शिक्षक जवाबदेही के रूप में अधिक मांग-पक्ष गतिविधि में प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए (ये सभी स्कूल सुधारों के लिए वैश्विक निर्देशों में शामिल हैं)।

सुधारों के लिए नई कार्यनीति के आधार पर दर्शन का अंतिम तत्व शिक्षक को एक 'राजनीतिक एजेंट' के रूप में प्रस्तुत कर रहा है, यूनियनों से उसकी सामूहिक कार्रवाई सुधार के लिए एक बाधा के रुप में – भारत से और छह लैटिन अमेरिकी देशों (ग्रिंडल, 2004) के विद्वान साहित्य (प्रियम, 2015) से इस बयान को एक जवाब मिलता है। अक्सर, शिक्षक उन शिकायतों का समाधान करने के लिए यूनियनों का सहारा लेते हैं जो राजनीतिक हस्तक्षेप और नियंत्रण या नौकरशाही के उनके कार्य जीवन पर नियंत्रण के परिणाम हैं। शिक्षकों पर राजनीतिक और नौकरशाही नियंत्रण और वास्तव में शिक्षण प्रक्रिया दोनों निहित स्वार्थों की प्रकृति में हैं जो शैक्षिक परिवर्तन को अवरुद्ध करते हैं। सफल सुधारों में निहित स्वार्थों को शामिल करने और शिक्षकों का समर्थन हासिल करने के लिए अक्सर बातचीत की जाती है, जो उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए कार्यनीतिक पैंतरेबाजी का एक रूप है। राजनीतिक रूप से निर्देशित शैक्षिक सुधारों ने इन अवसरों का उपयोग शिक्षकों की भर्ती के लिए काफी कम प्रवेश मानदंड पर किया है, जैसे कि भारतीय राज्यों में पैरा-शिक्षक (कुमार, प्रियम और सक्सेना, 2001; किंग्डन और सिपाहिमालानी-राव, 2010) भारत में पैरा-टीचर्स के बारे में अधिक जानकारी के लिए

प्रियम (2015)। भारत के बिहार राज्य में शिक्षक नीति भर्ती की राजनीतिक दिशा को सामने लाती है, जो अंततः राज्य की स्कूल प्रणालियों से सबसे गरीब लोगों के बहिष्करण का कारण बनी। इन राजनीतिक रूप से निर्देशित नीतिगत दुर्बलताओं को कुछ हद तक सुधारने के बाद ही बेहतर समावेश संभव था। लेकिन इससे भी चीजों में पर्याप्त सुधार नहीं हुआ – एक बार जब काम पर रखने के मानदंड को कम कर दिया गया था, तो शिक्षकों की खराब गुणवत्ता एक परेशानी बनी रही है। सिंह (2011) की रिपोर्ट है कि इन नव भर्ती (शिक्षकों) की एक बहुत बड़ी संख्या एक कक्षा पांच के छात्र के लिए अभिप्रेत परीक्षा को उत्तीर्ण करने में भी विफल रही!

चिंतन शिक्षणः सीखने के विमर्श के केंद्र में 'शैक्षिक' की पुर्नस्थापना।

फिर एक संभव तरीका क्या है? क्या सामूहिक शिक्षा या गुणवत्ता के विरोधियों द्वारा किसी भी अवसर पर 'सीखने', 'परीक्षण', 'जवाबदेही', 'निगरानी' और तुलनाकर्त्ता स्कूल-सिस्टम (स्वयं के बाहर) से सीखने की विद्वतापूर्ण आलोचना है? नीति और राजनीति की ओर से, क्या शिक्षकों के लिए केवल एक मात्र प्रेरणा आर्थिक ही है – उच्च वेतन या पेशेवर प्रेरणाएं हैं? और क्या वे आर्थिक लाभ को अधिकतम करने की एक विलक्षण तर्क संगतता के साथ संघ संबंधी गतिविधि में अपना विश्वास दोहराते हैं?

मैं पहले अंतिम प्रश्न के साथ शुरू करती हूँ – जब शिक्षक की आवाज को शैक्षिक विमर्श के एक भाग के रूप में सुना जाता है, तो यह स्पष्ट है कि विकासशील देशों के संदर्भ में प्रतिकूल होने के बावजूद शिक्षण के लिए उनके पेशेवर प्रेरणाएं मजबूत बनी हुई हैं। मजूमदार (2011) ने नोट किया कि ग्रामीण पश्चिम बंगाल में, शिक्षक अपनी पेशेवर चुनौतियों और जिम्मेदारियों को समझते हैं और मुख्य प्रेरक के रूप में गुणवत्तापरक शिक्षण की संकल्पना करते हैं। यह सबूत पश्चिम बंगाल में प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों की राजनीतिक-समर्थक और यूनियन नेताओं के रूप में प्रोटो-टाइप छवि के रूप में रहता है, एक ऐसी छवि जो उनकी पेशेवर भूमिका को ढक लेती है और कम करती है। मजूमदार का तर्क है कि भारत के प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षकों (सार्वजनिक रूप से वित्त पोषित) को उच्च-निम्न केंद्रीय निर्देशों और आदेशों को लागू करने के बजाय स्कूल स्तर के विकल्प बनाने में अधिक स्वायत्तता की आवश्यकता है, जिसमें केंद्रीय रूप से डिजाइन अत्यधिक परीक्षा अभिविन्यास के साथ पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम विवरण शामिल हैं (2011: 48)।

इसी तरह की एक घटना में, स्वर्गीय जोस मूइज (2008) ने भारत के आंध्र प्रदेश में सरकारी स्कूल के शिक्षकों की पैशेवर रवैया और प्रेरणा की जांच की। उत्तर काफी हद

तक समान हैं – शिक्षक अपनी भूमिका को महत्वपूर्ण मानते हैं: शिक्षकों के रूप में वे बच्चों को अच्छे नागरिक बनाने के लिए और देश के बेहतर भविष्य के लिए योगदान दे सकते हैं (मूइज, 2015: 512)। इसके अलावा, शिक्षक नौकरशाही नियंत्रण, अत्यधिक अकादमिक कार्य-भार, शैक्षणिक मार्गदर्शन के अभाव और मुख्य रूप से विद्यालय निरीक्षण के बहुत नियमित तरीके से जानकारी को ऊपर की ओर शैक्षिक नौकरशाहों के न्यूनतम स्तर तक भेजने के बारे में शिकायत करते हैं (मूइज, 2008: 520)। प्रियम (2015) शिक्षक हितों और उनकी यूनियनों के बीच के अंतर को स्पष्ट करता है। भारतीय राज्यों आंध्र प्रदेश और बिहार में शिक्षक यूनियनों के एक तुलनात्मक अध्ययन में, मुझे पता चला है कि भर्ती, तैनाती और स्थानान्तरण के लिए नीतियों में नौकरशाही और राजनीतिक विवेक एक महत्वपूर्ण कारण है कि शिक्षक अपनी यूनियनों पर भरोसा करते हैं (पृ.144)।

सार्वजनिक स्कूलों के अत्यंत नौकरशाही और उच्च-निम्न नियंत्रण की आलोचना करते हुए शिक्षण को एक कौशल उन्मुख दृष्टिकोण हेतु महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जा सकती है। इसके बजाय, एक विचार-आधारित दृष्टिकोण जिसमें विषय वस्तु का उपयोग, 'विकासशील चिंतन' के लिए सबसे महत्वपूर्ण बौद्धिक संसाधन के रूप में किया जाता है, शिक्षण प्रक्रिया पर केंद्रित शैक्षिक सुधारों का केंद्रीय ढांचा हो सकता है। जैसा कि इसके पैरोकार जोंगी डेंग (2001) नोट करते हैं, विषय वस्तु पर ध्यान केंद्रित करना, चिंतन सीखना और चिंतन शिक्षण एक नए दृष्टिकोण का निर्माण करते हैं, जो कौशल-आधारित दृष्टिकोण से अलग होता है। इसके अलावा, डेंग ने पाया कि कौशल-आधारित दृष्टिकोण दोषपूर्ण है, विषय-वस्तु और चिंतन के बीच अलगाव पर आधारित है। इसके बजाय, जॉन डेवी हमें विषय-वस्तु के लिए एक केंद्रीय भूमिका के साथ एक विचार-आधारित दृष्टिकोण प्रदान करते हैं । डेंग इस संबंध में डेवी के विचारों से तीन महत्वपूर्ण पहलुओं को रेखांकित करते हैं: पहला, विषय वस्तु पर ध्यान निश्चित मानक प्रदान करता है, और बेतरतीब सीखने से रोकता है; दूसरा, यह बच्चे के अनुभव को उस आधार को बनाने की अनुमति देता है जहां से तथ्यों, विचारों, क्षमताओं को लिया जा सकता है; और उन संसाधनों की खोज की जाती है जो आगे सीखने को बढ़ावा दे सकते हैं।

चिंतन, समालोचना और तर्क को प्रोत्साहित करने के लिए संवाद महत्वपूर्ण है; सीखना इस तरह के समालोचनात्मक विचार का प्रतीक है। इसके विपरीत, कौशल-आधारित दृष्टिकोण के लिए, विषय वस्तु जड़ है। विकासशील देशों में शिक्षार्थियों की एक

पूरी नई पीढ़ी के लिए, जहां 'लर्निंग फॉर ऑल' के एजेंडे में संभवत: महत्वाकांक्षी नए आधार मिलेंगे, यह सोच है, समालोचना और तर्क हैं जो ज्ञान के द्वार खोल देंगे। इन संदर्भों में, शिक्षण और अधिगम प्रतिकूल परिस्थितियों में होता है – निष्क्रिय सिद्धांतों के बजाय, शैक्षिक सुधारों के वैश्वीकरण के अप्रत्याशित लाभ को समलोचनात्मक ज्ञान के लिए एक प्रयास होने दें। फिलहाल, यह शिक्षक एजेंसी है जो इस बदलाव की वाहक है।

संदर्भ

बैली, सुप्रिया. (2012). फ्रेमिंग द वर्ल्ड बैंक एजूकेशन स्ट्रेटजी 2020 टू द इंडियन कंटेक्स्ट: एलाइनमेंट्स, चैलेंजस एंड ऑपरच्यूनिटीज इन एजूकेशन स्ट्रेटजी इन द डेवेलपिंग वर्ल्ड: रिवाइजिंग द वर्ल्ड बैंक'स एजूकेशन पॉलिसी, पीजी: 371–394. यूके: इमेरल्ड ग्रुप पब्लिशिंग लिमिटेड.

बस्सिया, नीना, एलिस्टर कमिंग, अमांडा डेटनोव, कैनेथ लिथवूड एंड डेविड लिविंगस्टोन. (2005). इंटरनेशनल हैंडबुक ऑफ एजूकेशनल पॉलिसी, पार्ट 2 वॉल. 13. डोर्डरेच्ड: स्प्रिंगरर.

बस्सिया, नीना. (2005). ट्राइएज ओर टैपेस्ट्री? टीचर यूनियन्स' वर्क इन एन एरा ऑफ सिस्टमिक रिफॉर्म इन इंटरनेशनल हैंडबुक ऑफ एजूकेशनल पॉलिसी, पार्ट 2 वॉल. 13: 593–609. डोर्डरेच्ड: स्प्रिंगरर.

बेटेल्ले, तारा, गीता गाँधी किंगडन एंड मोहम्मद मुजम्मिल. (2017). टीचर यूनियन्स इन इंडिया: डाइवर्स एंड पावरफुल इन द कम्पेरेटिव पॉलिटिक्स ऑफ एजूकेशन: टीचर्स यूनियन्स एंड एजूकेशन सिस्टम्स अराउंड द वर्ल्ड केंब्रिड्ज: केंब्रिड्ज यूनिवर्सिटी प्रेस.

बेटेल्ले, तारा. (2009). 'एब्सेंटीज्म, ट्रांस्फर्स एंड पैट्रोनेज: द पोलिटिकल इकोनामी ऑफ टीचर लेबर मार्केट्स इन इंडिया', पीएच.डी. डिजर्टेशन, स्कूल ऑफ एजूकेशन, स्टैंन्फर्ड यूनिवर्सिटी, स्टैंन्फर्ड.

कोएट्स, रॉबर्ट डेविड. (1972). टीचर्स' यूनियन्स एंड इंटरेस्ट ग्रुप पॉलिटिक्स: ए स्टडी इन द बिहेवियर ऑफ ऑर्गनाइज्ड टीचर्स इन इंग्लेंड एंड वेल्स. केंब्रिड्ज: केंब्रिड्ज यूनिवर्सिटी प्रेस.

कॉलिन्स, क्रिस्टोफर एस., एंड अलेग्जैंडर डब्ल्यू. वाइज्मेन (एड्स). (2012). एजूकेशन स्ट्रेटजी इन द डेवेलपिंग वर्ल्ड: रिवाइजिंग द वर्ल्ड बैंक'स एजूकेशन पॉलिसी. यूके: इमेरल्ड ग्रुप पब्लिशिंग लिमिटेड.

कुक, मरीया लॉरेना. (1996). यूनियन्स, द स्टेट एंड द डेमोक्रेटिक टीचर्स' मुवमेंट इन मेक्सिको. पेंसिलवेनिया: द पेंसिलवेनिया स्टेट यूनिवर्सिटी प्रेस.

कमिंग्स, विलियम क., एंड नोएल एफ. मेकगिन्न. (1997). इंट्रोडक्शन. इन इंटरनेशनल हैंडबुक ऑफ एजूकेशन एंड डेवेलपमेंट: प्रिपेयरिंग स्कूल्स, स्टूडेंट्स एंड नेशन्स फॉर द ट्वेंटी-फर्स्ट सेंचुरी पीपी. 3–43. ऑक्स्फोर्ड: पेरगामोन प्रेस.

डार्लिंग-हैमंड, लिंडा, एंड पीटर यंग्ज. (2002). 'डिफाइनिंग ''हायली क्वालिफाइड टीचर्स'': वॉट डज ''साइंटिफिकली-बेस्ड रिसर्च'' एक्च्यूअली टेल अस?', एजूकेशनल रिसर्चर 31(9): 13-25.

डार्लिंग-हैमंड, लिंडा. (2002). 'रिसर्च एंड रेटोरिक ऑन टीचर सर्टिफिकेशन', एजूकेशन पॉलिसी एनालिसिस आर्काइव्स 10: 36. अवेलेबल एट: http://epaa-asu-edu-/ojs/article/view/315. एक्सेस्ड ऑन 28 अप्रैल, 2017.

डी सीक्यूएरा, एंजेला सी. (2012). द 2020 वर्ल्ड बैंक एजूकेशन स्ट्रेटजी: नथिंग न्यू, ओर द सेम ओल्ड गोस्पेल. इन द वर्ल्ड बैंक एंड एजूकेशन: क्रिटीक्स एंड एल्टर्नेटिव्स. वॉल. 14. रॉटरडैम: सेन्स पब्लिशर्स.

डेंग, जोंगयइ. (2001). 'द सेंट्रलिटी ऑफ सब्जेक्ट मेटर इन टीचिंग थिंकिंग: जॉन डेवेयी'स आइडिया ऑफ साइकोलोजाइजिंग द सब्जेक्ट मेटर रिविजिटेड', एजूकेशनल रिसर्च जर्नल 16(2): 193-212.

इवंस, डेविड रसैल. (1971). टीचर्स एज एजेंट्स ऑफ नेशनल डेवेलपमेंट; ए केस स्टडी ऑफ यूगांडा. न्यूयॉर्क: प्राइगेरक पब्लिशर्स.

गिन्सबर्ग, मार्क. (2012). टीचर्स आस लर्नर्स: ए मिस्सिंग फोकस इन ''लर्निंग फॉर ऑल''. इन द वर्ल्ड बैंक एंड एजूकेशन: क्रिटीक्स एंड एल्टर्नेटिव्स. वॉल. 14: 83-93. रॉटरडैम: सेन्स पब्लिशर्स.

गोयल, संगीता, एंड प्रियंका पांडे. (2013). 'कांट्रेक्ट टीचर्स इन इंडिया', एजूकेशन इकोनामिक्स 21(5): 464-484.

ग्रिंडल, मेरिली एस. (2004). डिस्पाइट द ऑड्स: द कंटेशियस पॉलिटिक्स ऑफ एजूकेशन रिफॉर्म. प्रिंसटन एंड ऑक्सफोर्ड: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस.

हीक्कलिंग-हड्सन, एन्ने, एंड स्टीवन जे. कलीस. (2012). एल्टर्नेटिव्स टू द वर्ल्ड बैंक'स स्ट्रेटजीस फॉर एजूकेशन एंड डेवेलपमेंट. इन द वर्ल्ड बैंक एंड एजूकेशन: क्रिटीक्स एंड अल्टर्नेटिव्स. वॉल. 14: 209-226. रॉटरडैम: सेन्स पब्लिशर्स.

होक्शबाय, केरोलिने मिंटर. (1996). 'हाउ टीचर्स' यूनियन्स अफेक्ट एजूकेशन प्रोडक्शन', क्वार्टर्ली जर्नल ऑफ इकोनामिक्स, 111(3): 671-718.

किंग्डन, गीता एंड मो. मुजम्मिल. (2003). द पोलिटिकल इकोनामी ऑफ एजूकेशन इन इंडिया: टीचर पॉलिटिक्स इन उत्तर प्रदेश. नई दिल्ली: ऑक्स्फोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

किंग्डन, गीता एंड वंदना सिपाही मालिनी-राव. (2010). 'पैरा-टीचर्स इन इंडिया: स्टेट्स एंड इम्पेक्ट', इकोनामिक्स एंड पोलिटिकल वीक्ली, 45(12): 59-67.

क्लीस, स्टीवन जे., जोवल सैमोफ्फ, एंड नेली पी. स्ट्रोमक्वीस्ट (एड्स). (2012). द वर्ल्ड बैंक एंड एजूकेशन: क्रिटीक्स एंड अल्टर्नेटिव्स. वॉल. 14. रॉटरडैम: सेन्स पब्लिशर्स.

कुमार, कृष्णा, मनीषा प्रिया एंड साधना सक्सैना. (2001). 'द ट्रबल विद ''पैरा-टीचर्स'', फ्रंटलाइन, 9 नवम्बर, पीपी 95-96.

लॉन, मार्टिन. (1985). द पॉलिटिक्स ऑफ टीचर यूनियनिज्म. इंटरनेशनल पर्स्पेक्टिव्स. केंट, यू.के.: क्रूम हेल्म.

लॉकहीड, मरलाएने. (2013). कॉजस एंड कांसिक्वेंसिस ऑफ इंटरनेशनल असेस्मेंट्स इन डेवेलपिंग कंट्रीज. इन पीसा, पावर, एंड पॉलिसी: द इमर्जेन्स ऑफ ग्लोबल एजूकेशनल गवर्नेन्स, पीजी: 163–183. ऑक्स्फर्ड: सिंपोजियम बुक्स लिमिटेड

मजूमदार, मनबी. (2011). 'पॉलिटिशियन्स, सिविल सर्वेंट्स ओर प्रोफेशनल्स? टीचर्स' वाईस ऑन देयर वर्क एंड वर्थ', कंटेंपोररी एजूकेशन डायलॉग, 8(1): 33–65.

मेयर, हाइन्ज–डाइटर एंड एरोन बेनावट (एड्स). (2013). पीसा, पावर एंड पॉलिसी: द इमर्जेन्स ऑफ ग्लोबल एजूकेशनल गवर्नेन्स. ऑक्सफोर्ड: सिंपोजियम बुक्स लिमिटेड

मोए, टेरी एम. (2017). द कंपेरेटिव पॉलिटिक्स ऑफ एजूकेशन: टीचर्स यूनियन्स एंड एजूकेशन सिस्टम्स अराउंड द वर्ल्ड. इन द कंपेरेटिव पॉलिटिक्स ऑफ एजूकेशन: टीचर्स यूनियन्स एंड एजूकेशन सिस्टम्स अराउंड द वर्ल्ड. कैम्ब्रिज : कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.

मो, टेरी एम. एंड सूजन विबोर्ग (एड्स). (2017). इंट्रोडक्शन. इन द कंपेरेटिव पॉलिटिक्स ऑफ एजूकेशन: टीचर्स यूनियन्स एंड एजूकेशन सिस्टम्स अराउंड द वर्ल्ड. कैम्ब्रिज : कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.

मो, टेरी एम. एंड सूजन विबोर्ग (एड्स). (2017). द कंपेरेटिव पॉलिटिक्स ऑफ एजूकेशन: टीचर्स यूनियन्स एंड एजूकेशन सिस्टम्स अराउंड द वर्ल्ड. कैम्ब्रिज : कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.

मूईज, जोस. (2008). 'प्राइमरी एजूकेशन, टीचर्स एंड सोशल क्लास: एबौट मोटिवेशन एंड डिमोटिवेशन ऑफ गवर्नमेंट स्कूल टीचर्स इन इंडिया', इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एजूकेशनल डेवेलपमेंट, 25(8): 508–523.

मुरिलो, मरीया विक्टोरीया. (1999). 'रिकवरिंग पोलिटिकल डायनामिक्स: टीचर्स' यूनियन्स एंड द डीसेंट्रलाइजेशन ऑफ एजूकेशन इन अर्जेंटीना एंड मेक्सिको', जर्नल ऑफ इंटर अमेरिकन स्टडीस एंड वर्ल्ड अफेयर्स, 41(1): 31–57.

पांडे, प्रियंका, संगीता गोयल, एंड वेंकटेश सुंदरम. (2010). 'पब्लिक पार्टिसिपेशन, टीचर एकाउंटबिल्टी एंड स्कूल आउट्कम्स इन थ्री स्टेट्स', इकोनामिक्स एंड पालिटिकल वीक्ली, 45(24): 75–83.

प्रियम, मनीषा. (2015). कंटेस्टेड पॉलिटिक्स ऑफ एजूकेशनल रिफॉर्म्स इन इंडिया: एलाइनिंग ऑपरच्यूनिटीज विद इंट्रस्ट, ऑक्स्फोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली

रेनोल्ड्स, सेसीलिया. (2005). नो टीचर लेफ्ट अनटेस्टेड; हिस्टोरिकल पर्स्पेक्टिव्स ऑन टीचर रेग्यूलेशन. इन इंटरनेशनल हैंडबुक ऑफ एजूकेशनल पॉलिसी, पार्ट 2 वॉल. 13: 569–577. डोर्डरेच्ड: स्प्रिंगरर.

सैच्स, जूडयथ. (2005). टीचर प्रोफेशनल स्टेंडर्ड्स: ए पॉलिसी स्ट्रेटजी टू कंट्रोल, रेग्युलेट ओर इन्हांस द टीचिंग प्रोफेशन? इन इंटरनेशनल हैंडबुक ऑफ एजूकेशनल पॉलिसी, पार्ट 2 वॉल. 13: 579–592. डोर्डरेच्ड: स्प्रिंगरर.

सेल्लर, सम एंड बॉब लिंगर्ड. (2013). पीसा एंड द एक्सपेंडिंग रोल ऑफ द ओ.इ.सी.डी. इन ग्लोबल एजूकेशन गवर्नेंन्स. इन पीसा, पावर, एंड पॉलिसी; द एमर्जेन्स ऑफ ग्लोबल एजूकेशनल गवर्नेंन्स, पीजी. 185–206. ऑक्सफोर्ड: सिंपोजियम बुक्स लिमिटेड

शर्मा, रश्मि एंड विमला रामाचंद्रन (एड्स). (2009). द एलिमेंटरी एजूकेशन सिस्टम इन इंडिया: एक्सप्लोरिंग इन्स्टिट्यूशनल स्ट्रक्चर्स, प्रोसेसिस एंड डायनामिक्स. नई दिल्ली: राउटलेड्ज.

सीलांडर, टीना एंड जौनी वालीजार्वी. (2013). द थियरी एंड प्रेक्टिस ऑफ बिल्डिंग पेडागोजिकल स्किल इन फिनिश टीचर एजूकेशन. इन पीसा, पावर, एंड पॉलिसी: द इमर्जेन्स ऑफ ग्लोबल एजूकेशनल गवर्नएन्स, पीजी: 77–97. ऑक्सफोर्ड: सिंपोजियम बुक्स लिमिटेड।

सिंह, संतोष. (2011). 'ओवर 8,000 बिहार टीचर्स फैल क्लास फाईव टेस्ट', द इंडियन एक्सप्रेस, 8 अप्रैल. अवेलेबल एट http://archive-indianeÛpress-com/news/over& 8000&bihar&teachers&fail&class&v&test/773225 एक्सेस्ड ऑन अक्तूबर 12, 2011.

स्टेनर-खाम्सी, गीता. (2012). फॉर ऑल बाय ऑल? द वर्ल्ड बैंक'स ग्लोबल फ्रेमवर्क फॉर एजूकेशन. इन द वर्ल्ड बैंक एंड एजूकेशन: क्रिटीक्स एंड अल्टर्नेटिव्स. वॉल. 14: 3–20. रॉटरडैम: सेन्स पब्लिशर्स.

विल्लेगास-रिमर्स, इलेओनारा एंड फर्नेंडो रिमर्स. (1996). 'वेअर आर 60 मिलियन टीचर्स? द मिस्सिंग वाइस इन एजूकेशनल रिफॉर्म्स एराउंड द वर्ल्ड', प्रॉस्पेक्ट्स, 25(3): 469–492.

वोंगालिस-मैक्रो, एथेना. (2012). डेलिबरेटिव एजूकेशनल प्लॉनिंग: इंक्लूडिंग एज्यूकेटर्स' डेलिबरेशन्स इन एजूकेशनल पॉलिसी मेकिंग. इन एजूकेशनस्ट्रेटजी इन द डेवेलपिंग वर्ल्ड: रिवाइजिंग द वर्ल्ड बैंक'स एजूकेशन पॉलिसी, पीजी: 229–248. यूके: इमेरल्ड ग्रुप पब्लिशिंग लिमिटेड.

वर्ल्ड बैंक. (1995). प्रायोरिटीज एंड स्ट्रेटजीस फॉर एजूकेशन: ए वर्ल्ड बैंक रिव्यू. वॉशिंग्टन, डीसी: द वर्ल्ड बैंक ग्रुप.

----------. (2011). एजूकेशन सैक्टर स्ट्रेटजी 2020: लर्निंग फॉर ऑल. वॉशिंग्टन, डीसी: द वर्ल्ड बैंक ग्रुप.

जाछारिया, जॉब एंड नीलेश पांडे. (2007). रेपिड अप्रेजल ऑफ टीचर रिक्रूटमेंट इन बिहार: बिहार 2007. पटना: यूनिसेफ.

जैप, माइक. (2017). 'द वर्ल्ड बैंक एंड एजूकेशन: गवर्निंग (थ्रू) नालेज', इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एजूकेशनल डेवेलपमेंट, वॉल्यूम 53, पीपी. 1–11.

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 25, अंक 3, दिसंबर 2018

डिस्लेक्सिक बच्चों के पठन-लेखन की समस्याएं

ध्वनि की पहचान एवं सही क्रम बताने का अभ्यास

सुभाष चन्द्र बसु*, **अंजलि पुरी**** एवं **शरत चंद्र बसु*****

परिचय

अकुमार दस वर्ष का एक हँसमुख लड़का है, हाल ही में टूटे दो दूध के दाँत उसे बहुत आकर्षक बनाते हैं। वह डिस्लेक्सिया से पीड़ित है। वर्तमान में वह अपने गृह राज्य बिहार में रह रहा है और वहीं एक निजी विद्यालय में दूसरी कक्षा का छात्र है। जब यह अवलोकन शुरू हुआ, अकुमार अपने माँ-बाप से अलग अपने मौसा-मौसी के पास चंडीगढ़ के उपनगरीय क्षेत्र में रह रहा था। यहाँ पर उसका दाख़िला पहली कक्षा में घर के पास (लगभग पांच मिनट की पैदल दूरी) के एक निजी विद्यालय में करवाया गया। यह विद्यालय पंजाब स्कूल शिक्षा बोर्ड के पाठ्यक्रम पर आधारित पूर्व विद्यालयी शिक्षा, प्लेवे से लेकर कक्षा पांच तक की शिक्षा प्रदान करता था।

पृष्ठभूमि

शैक्षिक पृष्ठभूमि

अकुमार की शिक्षा की शुरूआत अपने निवास स्थान (बिहार राज्य का एक उप मंडल) के समीप ही एक छोटे से निजी बालवाड़ी शैली के विद्यालय से हुई। उसे अपने अध्ययन के शुरूआती समय से ही अक्षरों को पहचानने, पढ़ने और लिखने का कौशल सीखने के लिए अपने ही कक्षा के अन्य साथियों की तुलना में ज़्यादा संघर्ष करना पड़ता था। यह परेशानी धीरे-धीरे अधिगम संबंधित समस्या बनती गयी, और वांछित शैक्षिक प्रगति न कर पाने के कारण वह अपने अन्य साथियों की तुलना में कम सफल छात्र साबित होता रहा। छह महीनों तक की शैक्षिक प्रगति से असंतुष्टि के कारण उसे एक दूसरे विद्यालय में स्थानांतरित किया गया। यह विद्यालय भी निजी बालवाड़ी शैली का था। इस नए विद्यालय के संचालक

* एस.आर.एफ., शिक्षा विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़
** असिस्टेंट प्रोफेसर, गवर्नमेंट कालेज आफ़ एजुकेशन, सेक्टर-20 चंडीगढ़
*** (क्लिनिकल साइकोलाजी), इंदिरा गाँधी नेशनल ओपन यूनिवर्सिटी,

द्वारा यह वादा भी किया गया कि इस बच्चे पर विशेष ध्यान दिया जायेगा, परन्तु शैक्षणिक सत्र के अंत तक शैक्षिक प्रगति बहुत धीमी और असंतोषजनक ही थी। अब अकुमार सात साल का हो गया था, इसलिए सरकारी प्राथमिक विद्यालय (घर से आठ-दस मिनट की पैदल दूरी) की पहली कक्षा में दाख़िला मिल गया। इस सरकारी प्राथमिक विद्यालय में वह अगले चार-पाँच महीने तक ही गया और जो कुछ पहले से सीखा हुआ था, इस दौरान उसका ह्रास होता रहा। इसके बारे में पूछे जाने पर उसकी माँ ने कारण यह बताया कि सरकारी प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों द्वारा अध्ययन और देख-रेख पर ध्यान न के बराबर था। फलतः फिर से विद्यालय बदला गया और उसे इस बार पास के ही एक निजी विद्यालय में दाख़िला मिला। यहाँ भी पहले जैसा ही हाल रहा और शैक्षिक सत्र के बीच में एक अन्य समान तरह के दूसरे विद्यालय में स्थानांतरित किया गया। एक और शैक्षणिक वर्ष की समाप्ति के उपरांत भी शैक्षिक प्रगति असंतोषजनक ही रही। अगले नए शैक्षिक सत्र की शुरुआत फिर से पहली कक्षा एवं एक नए विद्यालय से की गयी और पूर्ववत की तरह ही शैक्षिक सत्र के बीच में ही विद्यालय बदला गया। अब अकुमार नौ वर्ष का हो चुका था, परन्तु तीन साल में सात बार विद्यालय बदलाव के साथ बहुत ही धीमी, असंतोषजनक और अपर्याप्त शैक्षिक प्रगति का संचयी परिणाम यह था कि वह अब भी पहली कक्षा में ही था। शैक्षिक उपलब्धियों को लेकर विद्यालय प्रबंधन, शिक्षकों एवं अकुमार की माँ के बीच कई बातचीत; तर्क-वितर्क हुए और परिणामस्वरूप 'बच्चे में दोष है', 'पढ़ना नहीं चाहता है', 'सीखना नहीं चाहता है', 'बदमाशी करता है' आदि अवधारणा अकुमार के प्रति दृढ़ता के साथ विकसित होने लगी; जो कि चिंता का विषय था।

पारिवारिक पृष्ठभूमि

अकुमार के पिता और माता के परिवार की पृष्ठभूमि लगभग एक सामान है। दोनों बिहार से हैं, विकास एवं बाजार के मापदंड से देखा जाये तो उनका निवास क्षेत्र पूरी तरह से न तो ग्रामीण है न ही शहरी, कुछ-कुछ अर्धशहरी सा एक-दूसरे से लगभग पचास किलोमीटर की दूरी पर और वित्तीय स्थिति भी लगभग एक जैसी। पिता परास्नातक उपाधि धारक और माँ द्वितीय वर्ष तक स्नातक एवं इसी बीच शादी हुई और तृतीय वर्ष पूर्ण नहीं कर पाई। वर्तमान में अकुमार के पिताजी एक अन्य विवाह-संबंध में हैं और उस संबंध से भी संतान है। अकुमार की माँ और पिता का विवाह-विच्छेद क़ानूनी रूप से अब तक नहीं हुआ है, एवं इस हेतु प्रक्रिया अदालत के अधीन है। अकुमार इस तरह से इकलौती संतान है, जो जन्म के समय से ही सिर्फ और सिर्फ माँ के साथ रहा है; और वही इसका भरण-पोषण एवं

अन्य सारे देख-रेख करती रही। सभी परिस्थितियों का सारांश रूप देखा जाये तो यह है की अकुमार के जन्म के साथ ही उसके माता-पिता का पारिवारिक रूप से संबंध-विच्छेद हो गया एवं जन्म-पश्चात वह अपने पैतृक परिवार से दूर रहा। अकुमार के जन्मोपरांत उसके पिता एवं पैतृक पक्ष के परिवार वाले इससे दूरी बनाये रखे और धीरे-धीरे यह दूरी बढ़ती गयी।

चिकित्सीय पृष्ठ्भूमि

अकुमार का जन्म तो एक सरकारी अस्पताल में हुआ था, परन्तु जन्म के समय आई कुछ चिकित्सीय जटिलताओं के कारण तुरंत ही एक निजी अस्पताल में ले जाया गया। वहाँ पर उसे अगले सात दिनों तक 'इनक्यूबेटर' में रखा गया। अगले कुछ महीनों तक वह इसी अस्पताल के चिकित्सीय देख-रेख में रहा परन्तु स्वास्थ्य में वांछित सुधार न होने के कारण बड़े अस्पताल में भेजा गया। जहाँ पर यह तथ्य बताया गया कि उसे पक्षाघात हुआ है, इसी कारण आज भी उसके शरीर का दाहिना हिस्सा (दाहिना हाथ और पैर) बायें से कम सक्रिय एवं कमजोर हैं। कुछ दिन के बाद वह अस्पताल से नियमित जांच हेतु निर्देर्शों सहित मुक्त हुआ। इस नियमित जांच का सिलसिला उसके लगभग साढ़े पांच साल के होने तक चलता रहा; इतने ही समय तक 'फेनीटोइन' दवा का सेवन जारी रहा, ताकि उसे मिर्गी की परेशानी न हो। फलस्वरूप, इलाज बंद होने के बाद से अब तक ऐसी कोई समस्या सामने नहीं आयी है।

घर का जीवन

अकुमार घर पर लगभग सामान्य व्यवहार करने वाला बच्चा है, जैसा कि उसकी उम्र के अन्य बच्चे होते हैं; सिवाय इसके कि दाहिने हाथ एवं दाहिने पैर में सक्रियता एवं सक्षमता का कम होना। इस कारण वह 'दायें हाथ से काम करने वाला' होने के बावजूद अपने बायें हाथ का प्रयोग दैनिक कार्यों के निष्पादन में ज्यादा किया करता है। परन्तु लिखने के लिए वह अपने दायें हाथ का ही उपयोग करता, जबकि किताब पकड़ने, पन्नों को पलटने आदि के लिया बायें हाथ का। पाठशाला की शिक्षा एवं शैक्षिक उपलब्धियों को छोड़कर अन्य पहलू जैसे नई चीज़ें सीखना, खेलना, दौड़-धूप करना, उधाम मचाना, शरारत करना, बातें बनाना और छोटे-छोटे घर के काम करना आदि के स्तर पर देखा जाये तो वह बिलकुल सामान्य बालक है; कोई विशेष विभेद नहीं, कोई विविधता नहीं।

अकुमार की चिकित्सा के लिए अस्पताल जाना, विवाह-विच्छेद एवं संरक्षण मुकदमों हेतु न्यायालय जाना; एक व्यस्त और चिन्तापूर्ण समय रहा जिसके कारण उसकी माँ अवसाद से ग्रसित हो गयी और अब तक इसकी दवा ले रही है। इसका नतीजा यह रहा कि अकुमार की माँ कभी भी उसे पढ़ना-लिखना सिखाने, गृह कार्य एवं अन्य शैक्षिक गतिविधियों हेतु समय नहीं दे पाई। हालाँकि देखा जाए तो भरण-पोषण की सारी जिम्मेदारी मातृ पक्ष के परिवार ही करते आ रहे हैं, परन्तु शैक्षिक ध्यान देने का सतत, सफल एवं प्रभावी प्रयास न हो पाया।

नैदानिक मूल्यांकन

अकुमार से जुड़े सारे तथ्य दो प्रमुख समस्याओं की ओर संकेत करते है; एक व्यवहार संबंधी समस्याएं और दूसरा सीखने संबंधी समस्याएं। दैनिक कार्यों को करने के तरीके से यह भी स्पष्ट हुआ कि वह अधिकांश कार्यों में आवश्यक ध्यान नहीं दे पाता। कैन और बैगनेल (2014) के अनुसार शब्द पढ़ने में कठिनाइयाँ 'ध्यान के अभाव' से जुड़ी हुई है। उसी प्रकार से अकुमार को ध्यान की कमी के साथ-साथ खासकर लिखने- पढ़ने में होने वाली दिक़्क़तों के लिए किये गए नैदानिक जाँच-पड़ताल से यह स्पष्ट हुआ कि उसे डिस्लेक्सिया है।

शब्दों में कुछ अक्षरों के होने पर वह उन्हें पढ़ नहीं पाता और पूछे जाने पर जबाब होता 'नहीं पता'। यह परेशानी मुख्यत: उन शब्दों के साथ होती जिनमें अक्षर 'क्ष', 'त्र' और 'ऋ' शामिल होते थे। दो और तीन अक्षर वाले शब्दों को वह सामान्यत: सही-सही पढ़ लेता। परन्तु अधिक मात्रा शामिल होने या शब्दों की जटिलता बढ़ने पर पढ़ने में मुश्किल होता, या पढ़ने में गलती करता या नहीं भी पढ़ता। इन शब्दों को पढ़ने की गति भी काफी धीमी होती। पुस्तक अध्ययन सत्र के दौरान पढ़े गए शब्दों और लगे समय का विश्लेषण करने पर पाया गया कि उसे प्रति शब्द पढ़ने में सामान्यत: 10-20 सेकंड तक का समय लगता। अगर शब्द जटिल (पांच या अधिक अक्षरों से बने शब्द) हों तो प्रति शब्द सेकंड से भी अधिक समय लग जाता।

नोटबुक की लिखाई भी काफी गड़बड़ पायी गयी। परिशिष्ट-1 में लगे पहले चित्र को देखकर इस गड़बड़ी की गंभीरता को सटीकता से समझा जा सकता है। इसके पीछे की वजह शायद दाहिने हाथ में पूरी ताकत न मिल पाना भी रहा हो। लिखाई लगभग पढ़ने योग्य नहीं होती थी। सामान्यत: वह अपनी लिखाई भी मुश्किल से पढ़ पाता था या नहीं भी पढ़ पाता। अन्य लोग (उसके शिक्षक और साथी) उसकी लिखाई को अनुमान के आधार पर उससे थोड़ा बेहतर पढ़ लेते थे।

विभिन्न देशों में कई अध्ययनों फ्लेचर, फ्रांसिस, राउर्क, शेविट्ज तथा शेविट्ज (1992), गुस्तफसन तथा सेमुअल्सन (1999), सेमुअल्सन व अन्य, (1999) तथा शीगल (1992) में पाया गया कि, जिन बच्चों में पढ़ने की समस्या है और जिन्हें पढ़ने की समस्या नहीं है। उनके बुद्धिलब्धि (आई.क्यू./intelligence quotient) और रीडिंग स्कोर में कोई अंतर नहीं है। इन निष्कर्षों से पता चलता है कि आई.क्यू और रीडिंग स्कोर के बीच विसंगति डिस्लेक्सिया को इंगित करने के लिए आवश्यक नहीं है, और यह कि एक रीडिंग टेस्ट पर कम स्कोर वास्तव में, एक रीडिंग प्राब्लम का संकेत है। कई शोध वेलुटिनो व अन्य (1996) वेलुटिना , स्कैनलन तथा लायोन, 2000 यह सुझाव देते हैं कि किसी बच्चे के 'आई.क्यू. स्कोर' उसकी क्षमता का अनुमान नहीं लगाता है।

एवरेट व अन्य (1999) ने कार्यों की एक श्रृंखला का उपयोग करके रचनात्मकता और डिस्लेक्सिया के बीच संबंधों की जांच की और पाया कि डिस्लेक्सिक वयस्कों ने लगातार अधिक रचनात्मकता का प्रदर्शन किया। हालांकि,यह स्पष्ट नहीं है कि ये डिस्लेक्सिक लोग स्वाभाविक रूप से अपने न्यूरोलाजिकल मेकअप के कारण रचनात्मक है या शायद इनकी पार्श्व सोच क्षमताएँ और दृश्य स्थानिक जागरूकता बढ़ जाती है, जो कठिनाई वाले क्षेत्रों की क्षतिपूर्ति के लिए विकसित होती है।

कीन (2015) के अनुसार रचनात्मकता अनुभूति का एक गूढ़ पहलू है और यह लगभग हर मानवीय गतिविधि में पोषित और पुरस्कृत है, चाहे वह किसी व्यक्ति या सामाजिक स्तर पर हो, फिर भी, एक बुनियादी स्तर पर, शोधकर्ताओं के बीच कोई स्पष्ट सहमति नहीं है कि वास्तव में 'रचनात्मकता क्या है'। गेटजेल्स और जैक्सन (1962) ने बताया कि बुद्धिमत्ता और रचनात्मकता को अविभाज्य होने के दृष्टिकोण से अत्यधिक सहसंबद्ध किया गया था। वालाच और कोगन (1965) और वालाच और विंग (1969) ने दृढ़ता से प्रदर्शित किया कि रचनात्मकता की भविष्यवाणी आई.क्यू. या बुद्धिमत्ता के आधार पर नहीं की जा सकती।

अकुमार ने अब तक कोई उपचारात्मक निर्देश नहीं लिया था और रचनात्मकता के पैमाने पर सामान्य स्तर का था। इन सारे अध्ययनों फ्लेचर व अन्य (1992), गुस्तफसन और सैमुअल्सन (1999); सैमुअल्सन व अन्य (1999); शीगल (1992), वेलुटिनो व अन्य (1996); वेलुटिनो व अन्य (2000); वालाच व कोगन (1965); वालाच व विंग (1969); वालाच (1971) से यह स्पष्ट है कि 'आई.क्यू. की भूमिका' बड़ी ही धुँधली है; अतएव आई.क्यू. एवं अन्य संबंधित कारकों को इस अध्ययन का केंद्र बिंदु नहीं बनाया गया।

उपचारात्मक उपायों की शुरूआत

जैसा कि भानोत (2009) लिखती हैं कि बालक जिस वातावरण में रहता है उसमें उसे अनेक संवेगात्मक परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है और परिणामत: वह संवेगात्मक अस्थिरता का शिकार हो जाता है (पृ. 27)। इसके अलावा पारिवारिक संबंधों का भी बालक के संवेगात्मक व्यवहार पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है, साथ ही जिन बच्चों का स्वास्थ्य ख़राब होता है- वे संवेगात्मक दृष्टि से असंतुलित होते हैं (पृ. 26)। अत: इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए 'ध्वनि पहचानना एवं सही क्रम बताना' के शुरू करने से पहले लगभग दो महीने तक अकुमार को उसे अपने संवेगों को व्यक्त करने के लिए पर्याप्त अवसर दिया गया। इसमें अकुमार ने प्रतिदिन स्कूल के बाद सामान्यत: एक घंटे (40 - 70 मिनट) समय देना शुरू किया। इस शुरुआती सत्र में उसके पास अभिव्यक्ति की पूरी आज़ादी होती; किसी भी प्रकार का मूल्यांकन अथवा आलोचना जैसे तत्वों का कोई स्थान नहीं होता; बस एक कोशिश होती थी कि संवेगों के पुन: मार्गदर्शन का प्रशिक्षण मिले और साथ ही साथ उसके मस्तिष्क का बोझ कम हो।

इन सारी गतिविधियों के नतीजे का एक पहलू यह भी रहा कि अकुमार के साथ एक बेहद घनिष्ठ संबंध बन गया; नतीजतन अब सामान्यत: वह पहले से ज्यादा बातें करता व अपने विचार व्यक्त करता था। इसी दौरान एक और अभ्यास को प्रतिदिन की गतिविधि के रूप में शामिल किया गया- जो थी हिंदी की वर्णमाला बोलते हुए लिखना। धीरे-धीरे बात करने वाले समय का हिस्सा कम होता रहा और वर्णमाला एवं वर्णमाला का स्वर के साथ समायोजन क्रम बोलते हुए लिखने के अभ्यास को ज्यादा समय दिया जाने लगा। कोई भी सत्र नीरस न हो इसका हमेशा ध्यान रखा गया और इसी हेतु एक और नए अभ्यास; 'पठन-सत्र' को शामिल किया गया। इस 'पठन सत्र' की शुरुआत छोटे- सरल शब्दों से और बाद में धीरे धीरे जटिल एवं बड़े शब्दों को भी शामिल किया गया। अंतत: यह प्रतिदिन का अभ्यास मुख्य रूप से दो सत्र में चलता रहा; एक वर्णमाला को बोलते हुए लिखना और दूसरा हिंदी पाठ्य-सामग्री को बोलते हुए पढ़ना। दूसरे प्रारूप की पाठ्य-सामग्री सामान्यत: निर्धारित नहीं होती थी। कभी विद्यालय की कोई पुस्तक होती, कभी हिंदी समाचार पत्र या समाचार पत्र का खास हिस्सा (विज्ञापन, कहानी, कार्टून इत्यादि), कभी कोई कहानी की पुस्तक होती; पर वह होता अकुमार की मर्ज़ी के अनुसार। शुरुआत में वह उस पुस्तक को ज्यादा पसंद करता था जिसमें चित्र होते, शब्द सरल होते एवं शब्दों की संख्या कम हो।

बाद में इस अभ्यास को थोड़े से परिवर्तन के साथ भिन्न शैली में किया गया। इसमें भिन्नता यह थी कि सर्वप्रथम किसी पुस्तक का चुनाव करना होता, फिर दायें या बायें हिस्से के पृष्ठ को पढ़ना है- इसे निर्धारित करते हुये। इसके बाद निरुद्देश्यता से पुस्तक खोलते और जो भी पृष्ठ आता उसे पढ़ा जाता। पढ़ने के साथ- साथ पढ़े गए सारे शब्दों और गलत पढ़े गए शब्दों की गिनती की जाती एवं 'अगले दिन ज्यादा बेहतर करेंगे' की सोच के साथ सत्र समाप्त किया जाता। इसके साथ-साथ 'ध्वनि पहचानना एवं उनका क्रम बताना' को एक खेल की तरह अतिरिक्त गतिविधि के रूप में सम्मिलित किया गया, जिसका विवरण आगामी अनुच्छेद में दिया गया है।

ध्वनि पहचानना एवं सही क्रम बताना

इस अभ्यास के क्रियान्वयन में तीन मुख्य हिस्से थे; पहला अलग-अलग वस्तुओं के गिरने या गिराने से उत्पन्न हुई ध्वनि को सिर्फ सुनकर (बिना देखे) पहचानना, दूसरे हिस्से में एक ही वस्तु द्वारा उत्पन्न ध्वनियों की तीव्रता के अंतर को समझना और तीसरे हिस्से में था एक से अधिक उत्पन्न ध्वनियों को पहचानते हुए क्रमित करना।

ध्वनि की पहचान

यह इस अभ्यास का पहला हिस्सा था। इसमें बिना देखे अलग-अलग तरह की आवाज़ों को पहचानना शामिल था; यह बताना होता कि आवाज़ किस वस्तु विशेष की है। सबसे पहले शामिल की गई हर वस्तु को दिखा कर सामने गिराया जाता और इससे उत्पन्न हर अलग आवाज़ से अवगत कराया जाता। जब वस्तु विशेष को गिराने से होने वाली आवाज़ की भिन्नता समझ आ जाती तो आगे की प्रक्रिया शुरू की जाती जिसमे एक एक कर उन्हीं शामिल चीजों को गिराया जाता एवं आवाज़ पहचानने को कहा जाता। शुरूआत में एक बार में एक या दो चीज़ें ली गई, बाद में धीरे-धीरे बढ़ाते गए। एक बार में कोई एक वस्तु बेतरतीब ढंग से चयनित करके छिपाकर गिरायी जाती, और उत्पन्न आवाज़ को सिर्फ सुनकर वस्तु को पहचानना होता। यही क्रम अन्य वस्तुओं के साथ दोहराया जाता।

समान ध्वनियों की तीव्रता का विभेद करना

यह इस अभ्यास का दूसरा हिस्सा था। जब ध्वनि की पहचान के अभ्यास दौरान ज्यादातर सही पहचान होने लगी तब इस अभ्यास को शुरू किया गया। इसमें एक ही वस्तु को दो बार गिराया जाता। एक बार हलके से (कम बल लगाकर) और थोड़े

अंतराल के बाद एक बार ज्यादा बल के साथ ज़मीन पर गिराया जाता। जब कभी उत्पन्न ध्वनियों की तीव्रता लगभग सामान होगी तो उसमे विभेद करना किसी के लिए भी मुश्किल होगा। इस तरह की असमंजस से बचने के लिए ज़रुरी था कि दो उत्पन्न की गई ध्वनियों की तीव्रता में अंतर हो अतएव इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता कि यह अंतर तीव्रता के विभेद को पहचानने के लिए पर्याप्त हो।

ध्वनि का क्रम बताना

यह 'ध्वनि पहचानना एवं सही क्रम बताना' अभ्यास का अंतिम हिस्सा था। इसमें बिना देखे ध्वनि को पहचानने के साथ-साथ उत्पन्न ध्वनि का क्रम भी बताना होता। एक बार में न्यूनतम दो ध्वनियाँ थोड़े अंतराल पर चयनित चीजों द्वारा उत्पन्न की जातीं। फिर इस ध्वनि को सिर्फ सुनकर पहचानना होता और साथ ही इनका क्रम भी बताना होता अर्थात यह बताना होता कि कौन सी ध्वनि पहले और कौन सी बाद में उत्पन्न हुई है। यह अभ्यास पहले दो ध्वनियों के साथ शुरू हुआ फिर आवश्यक प्रगति होने के बाद तीन ध्वनियों के साथ, फिर चार और पांच ध्वनियों के साथ किया गया। वैसे तो यह पाँच से ज्यादा ध्वनियों के साथ भी किया जा सकता है, जो कि मुख्यत: प्रतिभागी की विभिन्न तरह की क्षमता पर निर्भर करेगा। इस प्रतिवेदित अभ्यास में यह पांच ध्वनियों तक रहा।

ध्वनि की पहचान करने में कोई परेशानी लगभग न के बराबर थी। सिर्फ दो ध्वनियाँ होने पर क्रम भी सही-सही बता देता, परन्तु तीन या तीन से अधिक ध्वनियाँ होने पर क्रम बताने में दिक़्क़त होती। यह तीन ध्वनियों का अभ्यास दो सप्ताह तक चला। तीसरे सप्ताह से चार ध्वनियों का क्रम शामिल किया गया. फिर अगले सप्ताह से पांच ध्वनियों का भी अभ्यास शुरू किया गया। चौथे सप्ताह में भी चार ध्वनियों का क्रम बताना थोड़ा मुश्किल रहा। पाँच ध्वनियों की पहचान और क्रम बताने के अभ्यास में ध्वनियों को पहचानने में कोई परेशानी नहीं थी, परेशानी थी तो सही क्रम बताने में ।

कुल मिलाकर परिणाम देखा जाए तो एक बात स्पष्ट हुई कि तीन ध्वनियों का क्रम सही-सही बताता, चार ध्वनियों का क्रम में सही और गलत पहचान लगभग बराबर होते। पाँच ध्वनियों का क्रम बताना अकुमार के लिए और भी ज़्यादा मुश्किल भरा होता। कई बार वह क्रम बताने से मना करता और जवाब देता कि 'ग़लत हो जायेगा', 'ठीक से याद नहीं'। यह अभ्यास का आखिरी हिस्सा अगले दो महीने तक और चला पर संख्यात्मक परिणाम लगभग पूर्ववत जैसा ही रहा, परन्तु वह हर बार ज़्यादा बेहतर करने

की कोशिश में लगा रहा। इस अभ्यास को उपरोक्त क्रम (सबसे पहले 6.1, फिर 6.2, और अंत में 6.3) में निष्पादित किया गया। इसके अलावा अन्य कोई तय पैटर्न नहीं रहा, बहुधा अकुमार की सहमति के अनुरूप चला।

'ध्वनि पहचानना एवं सही क्रम बताना' का शोध साहित्यिक परिप्रेक्ष्य

साउसा (2001) के अनुसार मस्तिष्क अनुवांशिक रूप से भाषा के लिए कार्यक्रम बद्ध है। वाक्य संरचना की जटिलता जितनी अधिक होगी, मस्तिष्क का दाहिने गोलार्द्ध क्षेत्र उतना ही ज्यादा सक्रिय होगा। पटेल (2004) के अनुसार पढ़ना संज्ञानात्मक-भाषाई प्रसंस्करण है, जो एक जटिल तंत्रिका संगठन द्वारा किया जाता है (पृ. 65)। मौखिक पढ़ने और समझ-बूझ कर पढ़ने में बाएं और दाएं गोलार्धों में कई नेटवर्क क्षेत्र और उनके दृश्य और श्रवण मार्ग शामिल होते हैं जो विभिन्न संबंधित कॉर्टिकल क्षेत्रों के रास्ते पर विभिन्न स्टेशनों से गुजरते हैं। मस्तिष्क का ललाट खंड भाषण अभिव्यक्ति, वाक्य निर्माण, कार्य स्मृति आदि के लिए जिम्मेदार है। सिर के पीछे पोस्टीरियर पारिएटल और टेम्पोरल लोब की सीमाओं के समीप, आक्सिपिटल लोब होता है, जो पहले उप-कोर्टिकल मार्गों से दृश्य जानकारी प्राप्त करता है। श्रवण सम्बंधित क्षेत्र और प्राथमिक श्रवण ग्रहण इसी टेम्पोरल लोब से सम्बंधित होते हैं। पेरिसिलियन क्षेत्र, एक ऐसा नेटवर्क है, जिसमें ललाट, ऊपरी और निचले टेम्पोरल लोब के क्षेत्र शामिल हैं। यही कार्टिकल पेरिसिलियन क्षेत्र और साथ में उप-कोर्टिकल सब्सट्रेट बोली जाने वाली भाषा के उत्पादन और समझ, दोनों के लिए जिम्मेदार है (पटेल, 2004, पृ. 66)।

फ्रिथ (1980) ने एक चार-चरण अधिग्रहण प्रक्रिया (fप्रस्तावित की जिसमें प्रत्येक अगला चरण पिछले चरण पर निर्भर है। सबसे पहले चरण में लोगोग्राफिक कौशल अर्थात्, अपनी संपूर्णता में परिचित शब्दों को पहचानने की क्षमता का विकास होता है। फिर अक्षर पहचान कौशल हासिल होती है; इस अवस्था में बच्चा अलग-अलग अक्षरों के साथ अलग-अलग स्वरों की पहचान करना सीखता है। तीसरा चरण है, आर्थोग्राफ़िक कौशल; इसमें अक्षर के उच्च स्तर के समूह, आदर्श रूप से 'शब्द का भाग', की पहचान की जाती है। चौथे चरण में, लिखित भाषा को पढ़ने की क्षमता पूरी तरह से बोली जाने वाली भाषा से स्वतंत्र हो जाती है। पढ़ने में अभ्यास की कमी के कारण या न्यूरोलाजिकल कारकों के कारण, सभी इस आखिरी चरण को सफलता पूर्वक हासिल नहीं कर पाते हैं।

तलाल (1980) के अनुसार डिस्लेक्सिक बच्चों में श्रवण ध्वनियों के त्वरित प्रसंस्करण की आवश्यकता वाले कार्यों में कठिनाई होती है।और इसके पीछे, वह परिकल्पना करती हैं कि इन डिस्लेक्सिक बच्चों में ये समस्याएं, सही समय पर ध्वनियों के अनुक्रमण में होने वाली कठिनाइयों के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती हैं। संयोजन सीखने की अक्षमता वाले छात्रों को नई चीजों को सीखने एवं नए सिरे से जानने में दूसरों की तुलना में अधिक समय और मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है, ताकि वे इनके अर्थ निर्धारित करने और अर्थ को पहचानने का अभ्यास कर सके। साथ ही साउसा (2001) यह भी ध्यान रखने को कहते हैं कि हालांकि, पूर्वाभ्यास के बिना लगभग कोई दीर्घकालिक प्रतिधारण नहीं होती और यह पूर्वाभ्यास दीर्घकालिक भंडारण में सूचना हस्तांतरण की गारंटी भी नहीं देता है।

डिस्लेक्सिया के बारे में सौसा (2001) लिखते हैं कि 'डिस्लेक्सिया के कुछ रूप मस्तिष्क की प्रक्रिया में असमर्थता हो सकती है कि वह क्या सुनता है, न कि वह क्या देखता है'। इस प्रकार शायद डिस्लेक्सिया वास्तव में डिस्फोनिया है- स्वनिम और ग्रफीम के बीच एक गलत संबंध। यदि ऐसा है, तो उपचारात्मक रणनीतियों को गहन अभ्यास के साथ सही फोनेटिक संयोजनों को फिर से स्थापित करने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए।

'ध्वनि पहचानना एवं सही क्रम बताना' का निष्पादन

ध्वनि पहचानने के इस अभ्यास में अकुमार को पाँच ऐसी वस्तुएँ लाने/ चुनने को कहा जाता जो गिराने पर टूटे नहीं और ध्वनि उत्पन्न करे। पहले हर वस्तु को नज़र के सामने गिराया जाता और उनके विशिष्ट आवाज़ से अवगत कराया जाता। फिर इन आवाज़ों से अच्छी तरह से अवगत हो जाने पर बिना देखे सिर्फ आवाज़ सुनकर उस वस्तु की पहचान करनी होती। जब इन शुरुआती पाँच वस्तुओं की आवाज़ पहचानने में कोई दिक्कत नहीं होती, तब पाँच और नयी वस्तुओं को शामिल किया जाता, और यह क्रम चलता रहा। इस 'पाँच' की संख्या के पीछे कोई विशेष वजह नहीं रही, कारण सिर्फ यह था कि वह हमेशा पाँच की संख्या में ही नयी वस्तुओं को शामिल करने की बात करता, कई बार यह कम-ज़्यादा भी हुए। अंत तक इसमें शामिल हुई वस्तुओं की सूची काफी लंबी हो चुकी थी। इसमें शामिल थे: कई तरह के भिन्न-भिन्न आकृति, आकार-प्रकार वाले पत्थर, कई प्रकार के बालपेन, पेंसिल से लेकर अन्य

लिखाई-पढाई से संबंधित सामान, घर में उपलब्ध स्टेशनरी संबंधित वस्तुएँ, घरेलू उपयोग में आने वाली प्लास्टिक (टूथब्रश से लेकर कंघी तक), धातु की बनी हार्डवेयर वस्तुएँ (नट-बोल्ट, पेचकश, प्लाश), रसोई में प्रयोग होने वाली वस्तुएँ (चाकू, चम्मच से लेकर कटोरी और थाली तक), टूथपेस्ट, क्रीम के ट्यूब, खाली-भरे डिब्बे, ढक्कन, अनेक प्रकार के पैकिंग-कार्टून, कई सजावटी वस्तुएँ, खेलने वाली गेंद और गुब्बारे से लेकर कमीज़ के बटन तक। यह सूची काफी विविधता-पूर्ण थी; कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि गिरने-गिराने पर ना टूटने वाली जो भी चीज दिखी या मिली, उसे इस अभ्यास का हिस्सा बना लिया गया। इस निर्धारित मानदंड से अलग कई बार कुछ टूटने वाली चीजों को भी गिराया गया और इनके टूटने पर या बिखरने पर एक अलग तरह की उत्पन्न होने वाली ध्वनि से भी परिचित हुए। अकुमार की भाषा में इस तरह की ध्वनियों को 'टूटने-फूटने की आवाज़' कहा गया। इस तरह की आवाज़ उत्पन्न करने के लिए टेलीविज़न रिमोट, मोबाइल फोन, ढक्कन वाले डिब्बे आदि का प्रयोग अकुमार द्वारा उत्सुकता पूर्वक किया गया। इसी उत्सुकता से कुछ और समरूप घटनाओं को उसने अपने घर पर भी अंजाम दिया- जिसके लिए उसे थोड़ी डाँट और थोड़ी पिटाई दोनों मिली। फिर भी आवाज़ पहचानने में जोश और जुनून की कोई कमी नहीं दिखी।

शोध-अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि डिस्लेक्सिया में कई सारे ध्वनि संबंधित अवयव भी शामिल हैं जैसे की संज्ञानात्मक-भाषाई प्रसंस्करण पटेल (2004), भाषा सीखने की चरणबद्ध कौशल अधिग्रहण प्रक्रिया फ्रिथ (1980), ध्वनियों के त्वरित प्रसंस्करण की आवश्यकता वाले कार्यों में कठिनाई तलाल (1980) मस्तिष्क की प्रक्रिया में असमर्थता और साथ में डिस्फोनिया साउसा (2001)। इन सब से यह स्पष्ट है कि ध्वनि की पहचान एवं सूचनाओं का प्रसंस्करण डिस्लेक्सिया जैसी स्थिति के अभिन्न घटक है। इनमें कुशलता का अभाव डिस्लेक्सिक प्रवृति को तीव्रता प्रदान करेगी। अत: डिस्लेक्सिक प्रवृति की गहनता किसी भी व्यक्ति में कम करने लिए यह जरुरी है कि ध्वनियों की पहचान और साथ ही अन्य संबंधित सूचनाओं का प्रसंस्करण ज्यादा से ज्यादा सटीकता से हो। इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए 'ध्वनि पहचानना एवं सही क्रम बताना' को एक योजनाबद्ध तरीके से अभ्यास के रूप में अपनाया गया, जो इस अध्ययन का एक अहम हिस्सा रहा।

लिखावट सुधार: सही तरीके से अभ्यास

अनुसंधान ग्राहम (1990) से पता चलता है कि छात्रों की वर्तनी और लिखावट की कठिनाइयाँ कोई भी रचना लिखने में बाधा डालती है। मैक्कार्थी और वैरिंगटन (2013) के सुझावानुसार फोनेमे-से-ग्रेफेम रुपांतरण में परेशानी लिखावट में विकारों के मुख्य कारणों में से एक है। और यही आगे जाकर गंभीर रूप से असामान्य वर्तनी के साथ खराब लिखाई का रूप ले सकती है, जिसे डिस्लेक्सिक- डिस्ग्राफिया भी कहा जाता है।

शोधार्थियों बेकर, गर्सटेन और ग्राहम (2003) ने यह भी पाया कि सफल हस्तक्षेपों; 'जिनमें छात्रों को उनके समग्र लेखनशक्ति, लेखन के लापता तत्वों और गुणवत्ता पर लगातार प्रतिक्रिया शामिल होती है', के द्वारा इस ख़राब लिखावट की परेशानी पर काबू पाया जा सकता है। इसके आगे साउसा (2016) लिखते हैं कि मस्तिष्क में लेखन के लिए ज़िम्मेदार कोई क्षेत्र विशेष या ''लेखन केंद्र'' नहीं है जैसा कि भाषा बोलने के लिए होता है। लेखन के लिए कई तंत्रिका नेटवर्क और प्रणालियों के समन्वय की आवश्यकता होती है और इससे संबंधित सभी नए कौशल सीखने होंगे। इसलिए लिखने की कला सीखने के लिए प्रत्यक्ष निर्देश की आवश्यकता है- यह मस्तिष्क के लिए जन्म-जात नहीं है। कड़ी मेहनत और बहुत अभ्यास के सहारे ही लिखने की कला में सफलता हासिल की जा सकती है।

क्लार्क और पीटरसन (1986) के मुताबिक शिक्षकों को हर दो मिनट में लगभग एक बार अनिवार्य निर्देशात्मक निर्णय लेने चाहिए। 'निर्देश के साथ प्रतिक्रिया' से छात्र और शिक्षक के बीच संवाद मजबूत होता है, जिससे छात्रों को अपनी लेखन शैली के प्रति संवेदनशीलता विकसित करने में मदद मिलती है। यह संवेदनशीलता छात्रों को लेखन की समस्याओं और ग़लतियों को विचारने, महसूस करने और सही करने के साथ-साथ उन्हें दूसरे के दृष्टिकोण से देखने के लिए प्रेरित कर सकती है। जैसा कि 'लिखने की कला मस्तिष्क के लिए जन्म-जात नहीं है', को ध्यान में रखते हुए लिखावट को सही करने के लिए 'प्रत्यक्ष निर्देश' साउसा (2016), एवं 'सतत प्रतिक्रिया' बेकर व अन्य (2003) के साथ-साथ सिर्फ 'कठिन अभ्यास' ही एक मात्र सहायक युक्ति चुनी गयी जो कारगर भी रही।

वह चित्रकारी पसंद करता परन्तु इसमें उसका हाथ तंग था। वह सामान्यत: चित्रकारी नहीं करता (हालाँकि उसे पसंद था), लेकिन इसके पीछे उसकी सोच कुछ ज्यादा ही जटिल होती। वह कोई एक साधारण तस्वीर बनाने के बजाए कई सारी चीजों

को समूह में - एक प्रसंग के रूप में प्रस्तुत करने की सोचता। जैसे कि विद्यालय में चित्रकारी की कक्षा में 'झोपड़ी' बनाने के लिए बताया गया एवं सभी से बनाने लिए कहा जाता तो अकुमार टूटी-फूटी झोपडी तो बना लेता और साथ ही रास्ता, पेड़-पौधे, सूरज, आस-पास आदमी-बच्चे, आदि को भी चित्रित करने की कोशिश करता और इस बारे में बात करता। वह अपनी ख़राब चित्रकारी के बारे में अच्छी तरह से जनता था और अपनी इस कमी को लेकर वह बातचीत करता। इन सत्रों के दौरान कभी भी चित्रकारी के लिए कोई ख़ास प्रयास नहीं किया गया।

प्रेरणा छात्रों की शैक्षिक सफलता प्राप्त करने के लिए उनके विचारों और कार्यों को संचालित करती है और सीखने, प्रदर्शन और व्यवहार करने के उनके प्रयासों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं एण्डरमैन-वोल्टर्स (2006)। इसलिए जहां परस्पर विश्वास और सकारात्मक प्रभाव होता है, और जहां एक-दूसरे को अच्छी तरह से जानने का भरपूर अवसर मिलता है, वहाँ छात्र-शिक्षक संबंध एक उच्च गुणवत्ता वाले बंधन में विकसित हो सकते हैं पिआण्टा हैमरे और स्टूलमैन (2003)। शोध साउसा (2016) यह भी बताते हैं कि शिक्षक छात्रों को जब मुख्य रूप से मौलिकता और व्याख्या से संबंधित प्रतिक्रिया प्रदान करते हैं, तब लाभ की संभावना अधिक होती है। अत: एक बेहतर संबंध के साथ लिखावट को सुधारने, सुन्दर, स्पष्ट और पठनीय बनाने के लिए सतत प्रतिक्रिया, हर ज़रूरी तकनीकी पक्षों के बारे में जानकारी समय-समय पर दी जानी चाहिए।

लिखावट में सुधार क्रमश: हुआ और सुधार के इस क्रम को परिशिष्ट में लगे चित्रों में देखा जा सकता है। चित्र-1 उपचारात्मक उपायों के शुरुआत से पहले की है। चित्र-2 और 3 अभ्यास के तीसरे और छठे महीने से है। दूसरे और तीसरे चित्र में लिखावट धीरे-धीरे स्पष्ट और पढने योग्य हो रही है। हालाँकि लिखने में कई गलतियाँ अभी भी हो रही थी जो सामान्य तौर पर डिस्लेक्सिया वाले बच्चो में होती हैं। ये गलतियाँ सिर्फ लिखावट से संबंधित नहीं होती; बल्कि समझ के साथ भी जुडी होती हैं। इस लिखावट सुधार अभ्यास में लिखाई की स्पष्टता को मुख्यत: ध्यान में रखा गया। लिखावट सुधार हेतु किए गए निरंतर अभ्यास ने अकुमार की लिखावट को पहले से ज़्यादा, स्पष्ट, सुन्दर और पठनीय बना दिया।

विचार-विमर्श : विशेष व्यावहारिक, सामाजिक और भावनात्मक सहायता

अब तक इन सारे अभ्यास को करते हुए छह महीने से ऊपर हो गए थे। अकुमार में कई महत्वपूर्ण बदलाव भी नजर आ रहे थे, जैसे की शुरुआत में वह पाठ्य-पुस्तक पढ़ने के

बारे में सामान्यत: कहता था कि 'बहुत कठिन है'; 'मुझे कुछ समझ नहीं आता' और संबंधित गतिविधियों को टालने की पूरी कोशिश करता। परन्तु अब वह पाठ्य-पुस्तक को पढ़ने व समझने की कोशिश करता, जो शब्द या वाक्य मुश्किल होता या नहीं आता उसे जानने की कोशिश करता, उसका अर्थ पूछता। पहले लिखने-पढ़ने के दौरान होने वाली ग़लतियों को लेकर डरा रहता था, अगर कोई गलती हुई तो डांट पड़ेगी या पिटाई भी हो सकती है। कोई गलती ना हो जाए, इस कारण से वह लिखने-पढ़ने की शुरूआती कोशिश करने से डरता और इन गतिविधियों से बचना चाहता। अब वह पढ़ने-लिखने की न सिर्फ कोशिश करता, बल्कि इन शैक्षणिक गतिविधियों में रूचि भी लेता। उसे पढ़ने-लिखने के दौरान हुई ग़लतियों को जानने की उत्सुकता रहती और अपनी इन ग़लतियों को सुधारने में प्रयासरत रहता। विद्यालयी स्तर पर भी बदलाव नज़र आये जैसा कि कक्षा-शिक्षिका ने बताया कि वह गृह- कार्य का कुछ हिस्सा हर रोज़ करने लगा, कक्षा में ज़्यादा एकाग्रता प्रदर्शित करता। इन सब के अतिरिक्त वह यह समझने लगा था कि उसे सवालों को करने में अपने अन्य साथियों से अधिक समय लगता है। शिक्षक की तरफ से आश्वासन मिलने पर; 'कि कोई बात नहीं, आराम से सवाल करो- अगर दिक्कत आयी तो मदद मिलेगी', तो वह सामान्यत: प्रयास में सफल रहता और खुशी-खुशी अपना कार्य जाँच भी कराता। वह मौन इशारों को बड़ी जल्द समझ लेता जैसे कि कभी-कभी जब उसे लगता कि दिए गए सवाल के लिए ज्यादा समय लगेगा तो वह मौन उदासीन भाव के साथ शिक्षिका को देखता; जवाब में जैसे ही उसकी शिक्षिका मुस्कुराती; उसके चेहरे पर क्रियात्मक खुशी नज़र आने लगती। प्रतिपुष्टि के तौर पर शिक्षक के द्वारा आलोचना न होना; 'गलतियों को सुधारने के साथ-साथ विश्वास दिलाना कि, कोई नहीं अगली बार बेहतर करना है', उसके आत्म-विश्वास और आत्म-सम्मान को मज़बूत करता था।

अकुमार के बदलती व्यवहार के साथ दिनचर्या में शामिल दैनिक कार्य और उनको दिए जाने वाले वक़्त का परिमाण भी बदल रहा था। इसी तरह का एक बड़ा बदलाव यह था कि अब वह विद्यालय से मिले गृह-कार्य को दिलचस्पी से करता, जो कि पहले उसके लिए एक उबाऊ और थकाऊ काम था और उसे बिल्कुल पसंद नहीं था। हालाँकि गृह-कार्य पूरा करना अभी भी उसके लिए एक बड़ी चुनौती थी। प्राय: वह आधा-अधूरा कार्य ही कर पाता, पर वह अपनी इच्छानुसार समझ के साथ घर पर अपने खाली समय का उपयोग विद्यालय से मिले गृह-कार्य को पूरा करने में लगाता। अक्षर 'क्ष', 'त्र' और 'ऋ' के शब्दों में होने पर ना पड़े जाने की समस्या से उबरने के लिए पूरे वर्णमाला की

एक प्रति वाला पृष्ठ दिया गया, जो हमेशा अपने पास रखने को कहा गया। जब कभी इन अक्षर वाले शब्द आये तो दिए गए पृष्ठ को सन्दर्भ की तरह प्रयोग करने को कहा गया। शुरूआत में यह थोडा परेशानी वाला एवं सामान्य से अधिक समय लेने वाला रहा; परन्तु यह तरकीब अक्षरों का भूल जाने वाली समस्या को कम करने में काफी हद तक सहायक रही।

जैसा की रीडिंग काम्प्रिहेंशन टेस्ट में शोधार्थियों लेसौक्स लिपका और शीगल (2006); ने पाया कि डिस्लेक्सिक् बच्चों को अतिरिक्त समय देने से उनके पढ़ने के स्कोर में सुधार हुआ। साथ ही बसु पूनम और बेनीवाल (2018) लिखते हैं कि इन डिस्लेक्सिक बच्चों को अतिरिक्त शैक्षणिक सहायता, विशेष व्यवहार, सामाजिक ध्यान और लगातार भावनात्मक देखभाल की भी आवश्यकता होती है। अतः कक्षा में वर्ग शिक्षिका द्वारा नियमित रूप से अतिरिक्त समय और अलग से ध्यान दिया गया। यह अतिरिक्त समय उसे परीक्षा में भी दिया जाता, पर उसने कभी इस अतिरिक्त समय का प्रयोग नहीं किया, हमेशा सामान्य निर्धारित समय ही पर्याप्त रहा।

आर्मराड (2000) कहते हैं कि शिक्षक के रूप में हमारा सबसे महत्वपूर्ण काम 'छात्रों को सीखने' में मदद करना है, हमें छात्रों को सिखाने, सर्वांगीण रूप से विकसित करने और शैक्षणिक लक्ष्यों को हासिल करने में उन्हें मदद करने के लिए हर तरह की रणनीतियों का निरंतर उपयोग करना चाहिए। अतएव इन सारे अभ्यास के साथ-साथ व्यवहारिक और मनोवैज्ञानिक दोनों स्तरों पर विशेष सहायता (विद्यालय के अंदर एवं विद्यालय के बाहर) देने का हर संभव प्रयास किया गया। हालाँकि अकुमार के शिक्षिका के पास 'डिस्लेक्सिया' या अन्य किसी भी प्रकार के 'सीखने की परेशानी' के बारे में कोई विशेष प्रशिक्षण नहीं था। परन्तु; 'अकुमार को लिखने-पढ़ने में होने वाली परेशानी का कारण डिस्लेक्सिया है; जानने के बाद पूरे उत्साह के साथ विद्यालयी स्तर पर हर संभव मदद करने का प्रयास उन्होंने अपनी ओर से किया।इन सब के परिणाम स्वरुप, अकुमार की पढाई में रूचि एवं विद्यालय के प्रति रवैया, दोनों में सकारात्मक परिवर्तन हुए; कक्षा में शांत, उत्तेजनाहीन और हताश बैठा रहने वाला अकुमार; अब बातें करता, सवाल पूछता, गंभीरता से ज़वाब भी देता और साथ ही चंचलता भी दिखाता।

ध्वनि पहचानना एवं सही क्रम बताना : एक अनियंत्रित प्रयोग

हालाँकि यह पहले से बिल्कुल भी तय नहीं था की 'ध्वनि पहचानना एवं सही क्रम बताना' किस हिस्से का अभ्यास कितने दिनों के लिए होगा। ऐसा इसलिए था क्योंकि

यह पूरी तरह से सीखने की व्यक्तिगत क्षमताओं और गति पर निर्भर था। अत: अभ्यास की समाप्ति हेतु कोई पूर्व निर्धारित समापन बिंदु नहीं था। पहले हिस्से पर निपुणता हासिल कर लेने के बाद दूसरे और इसी प्रकार तीसरे हिस्से तक क्रमश: बढ़ते हुए 'कठिनाई स्तर' के आधार पर पूरे अभ्यास को निष्पादित करना ही एकमात्र मानदंड और मापदंड दोनों था।

'ध्वनि पहचानना एवं सही क्रम बताना' के साथ-साथ पूरे हिंदी वर्णमाला को बोलते हुए लिखना एवं बोलते हुए हिंदी पुस्तक पढ़ने का अभ्यास लगभग दस महीने (170 दिनों) का रहा। प्रतिदिन की कोई समय सीमा तय नहीं थी; पूरी तरह से अकुमार की अभिरुचि पर निर्भर था। फिर भी यह अभ्यास प्रति सप्ताह चार या पाँच दिन और प्रत्येक दिन लगभग एक घंटे (50 से 70 मिनट) तक चलता। इस एक घंटे के अभ्यास के आलावा उसकी सारी दिनचर्या पूर्ववत रही। अभ्यास के आखिरी दिनों में ज्यादा समय हिंदी पाठ्य पुस्तक को पढ़ने में दिया जाने लगा एवं इस पढ़ने के अभ्यास के दौरान पढ़े गए कुल शब्दों की गिनती की जाती, गलत पढ़े गए शब्दों को अलग से चिन्हित किया जाता, और साथ ही साथ पढ़ने में लगे समय को भी लिखा जाता। धीरे-धीरे अकुमार को इस अभ्यास में विशेष रुचि लगने लगी। वह हर बार पहले से बेहतर करने की कोशिश करता और कई बार अपनी कोशिश में सफल रहता। कम समय में ज्यादा शब्द पढ़ने एवं आगे से गलतियाँ कम हो इसके लिए गलत पढ़े गए शब्दों को सही करने का अभ्यास करता। इन शब्दों को कई बार बोलते हुए लिखा जाता। साथ ही पूछे जाने पर पढ़ी गई कहानियों को वह अपने तरीक़े से कहता- जो यह दर्शाता है कि वह इन चीजों को समझ भी रहा था।

पढ़ने की क्षमता में अकुमार अपनी उम्र के समकक्ष हो रहा था। अब वह ऊपरी कक्षाओं की हिंदी पाठय-पुस्तक को आसानी से पढ़ लेता। पुस्तक पढ़ने के अभ्यास के आखिरी दिन राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (रा.शै.अ.प्र.प.) की हिंदी भाषा में लिखी अतिरिक्त पाठ्य-पुस्तक पढ़ी गयी। यह उच्च प्राथमिक कक्षा के लिए लिखी गयी कहानियों की पुस्तक थी। इसका शीर्षक था 'तोता और राजा', जो चार पन्नों की कहानी थी। गिनती करने पर पहले पृष्ठ पर 226, दूसरे पृष्ठ पर 140, तीसरे पृष्ठ पर 170 और चौथे पृष्ठ पर 134; कुल मिलकर 670 शब्द, इस सत्र में पढ़े गए। इसे पढ़ने में कुल 18 मिनट और 6 सेकंड का समय लगा। पढ़ने के दौरान एक बार वह पढ़ी जा रही पंक्ति को भूल गया था। यह समय के 4 मिनट पर हुआ; और 7 सेकंड के बाद समय के 4 मिनट और 7 सेकंड पर सही पंक्ति से आगे पढ़ना जारी रहा। इसमें कुल 22 शब्दों को गलत पढ़ा गया। शब्द को गलत पढ़े जाने वाली, ये ग़लतियाँ बड़ी सामान्य सी थी जो

पढ़ने के प्रवाह में अक्सर हो जाती हैं; और सामान्यत: इससे वाक्य के अर्थ पर कोई खास अंतर नहीं पड़ता। जैसे 'दिलाई' को 'दिलवाई' 'तोते' को 'तोता' 'वही' को 'वह' पढ़ा जाना। सामान्यीकरण पर यह स्पष्ट होता है की अब तक उसके पढ़ने की गति सामान्य से ऊपर और शुरुआत से काफी बेहतर हो चुकी थी।

अकुमार में हो रहे बदलाव की प्रक्रिया की बात की जाए तो यह कहा जा सकता था कि तीसरे महीने के बाद से वह इस अभ्यास को ज़्यादा निपुणता से कर रहा था। इस बदलाव प्रक्रिया को सटीकता से व्यक्त करने और समझने का माध्यम उसके द्वारा की जाने वाली बातें और उसका बर्ताव एक मुख्य माध्यम हो सकता है। जैसा कि अकुमार बताता- 'किताब के पृष्ठ पलटने की आवाज़; अखबार के पन्नों की आवाज़ से अलग है', 'अलग-अलग तरह की पृष्ठों वाली किताब के पृष्ठों से अलग-अलग तरह की आवाज़ निकलती है', 'एक पृष्ठ गिराने; एक अखबार के गिराने; पूरी किताब के गिराने से उत्पन्न आवाज़ अलग-अलग तरह की होती हैं'। वह अपनी हाथ की उंगलियों, हथेली को मेज़ पर टक्कर करके अलग अलग तरह की आवाज़ उत्पन्न करता और उनकी भिन्नता के बारे में बात करता। सीढ़ियों से चढ़ते समय या फर्श पर चलते समय व्यक्ति जूते पहने है या चप्पल पहने है या नंगे पाँव है, ये सब चलने की आवाज़ से पता लग सकता है। यहाँ तक कि वह सर खुजलाने और बदन खुजलाने की आवाज़ में भी अंतर बताता। शायद इन अलग-अलग तरह की आवाज़ों को समझने की कोशिश उसके विभेद करने की मस्तिष्कीय क्षमता को और भी अधिक गहन और सबल कर रही थी।

अब उसके पास दोस्तों के साथ बात करने लिए एक खास दृष्टिकोण होता, वह थी अलग-अलग तरह की वस्तुओं से उत्पन्न अलग-अलग तरह की आवाजें। इसके बारे में चर्चा करना समझना और समझाना उसे पसंद था। ऐसा शायद इस कारण भी हो क्योंकि बिना देखे सिर्फ सुनकर आवाज़ पहचानने का कार्य वह अपने दोस्तों की तुलना में ज्यादा दक्षता से कर सकता था। यह विशिष्ट एहसास की 'किसी क्षेत्र विशेष में वह अन्य से बेहतर है', उसे हर्षित करता और साथ ही यह अनुभूति उसकी हीनता की भावना को भी कम करने लगा। हालाँकि इन सारे अभ्यास सत्र की पठन सामग्री मुख्यत: हिंदी भाषा ही रही। नतीजतन अकुमार के हिंदी पढ़ने की क्षमता में सुधार आया। परन्तु यह सुधार सिर्फ हिंदी भाषा तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि उसकी शिक्षिका द्वारा किए गए छोटी-छोटी व्यावहारिक सहायता का यह नतीजा हुआ कि गणित और अंग्रेजी भाषा के साथ-साथ पंजाबी भाषा में भी स्थिति बेहतर हुई। विद्यालय के रिपोर्ट कार्ड से

यह बात स्पष्ट हो रही थी कि वह अब सारे विषयों में सामान्य से अधिक अंक हासिल कर रहा था।

ध्वनि की पहचान एवं क्रम बताने के अभ्यास सत्र के पूर्व बहुधा देखा गया था कि अकुमार जब कोई बात कहना शुरू करता तो बीच में ही बिना बात पूरी किये रुक जाता। शायद इस कठिनाई का कारण 'अल्पकालिक स्मृति' था। शायद इसी वजह से उसे विचारों को अभिव्यक्त करने में परेशानी होती। बाद में अभ्यास के दौरान, एक बदलाव यह आया कि रुकने और चुप रहने के बजाय, अब वह कहता कि 'मैं भूल गया, जो मुझे कहना था'। सवाल से घबराने वाला अकुमार, अब जोश और पूरे विश्वास के साथ सवाल की समस्या का जवाब देता– 'करके देखता हूँ'। एक अध्ययन कलोइमा बसु (2017) के अनुसार बच्चों में व्यवहारात्मक और भावनात्मक समस्याओं का कम होना, उनके बेहतर शैक्षणिक उपलब्धियों को सुनिश्चित करने के लिए ज़रुरी है। 'असफल होने' पर, शिक्षक और परिवार द्वारा नकारात्मक टिप्पणी देने के बजाए 'विश्वास दिलाना कि अगली बार ज़रूर सफल होंगे और इसके लिए एक बार फिर मिलकर कोशिश करना' सीखने में शामिल अकेलेपन को दूर करता है। क्योंकि इस तरह की सकारात्मक प्रेरणा से बच्चे को एक तरह की भावनात्मक मदद मिलती है, फलस्वरूप व्यवहारात्मक परेशानियाँ कम होती है और साथ होने का यह अहसास आत्म–विश्वास को मजबूत भी करता है। इस तरह 'साथ–साथ मिलकर सीखने–सिखाने का प्रक्रम' होने पर कोई भी डिस्लेक्सिक 'सीखने संबंधित परेशानियों' पर सफलता पूर्वक आधिपत्य स्थापित करने तक एक के बाद एक कोशिश करता रहेगा, जैसा की अकुमार के मामले में हुआ।

स्कूल के बाहर गतिविधियाँ: रुचि, जुड़ाव, आनंद और अभिप्रेरणा

शोध–कार्यों से पता चलता है कि विभिन्न प्रकार की गतिविधियों में भागीदारी के कई सकारात्मक शैक्षणिक और सामाजिक परिणाम होते हैं। उदाहरण के लिए, मार्श और क्लाइमैन (2002) ने पाया कि स्कूल के बाहर की गतिविधियों में भागीदारी उच्च ग्रेड, मनोवैज्ञानिक लचीलापन और सकारात्मक सहकर्मी संबंधों से जुड़ी थी, खासकर सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित छात्रों के लिए, जो पारंपरिक शैक्षिक पाठ्यक्रम द्वारा कम से कम अच्छी तरह से सेवा प्रदान करते हैं। फ्रैडरिक्स और इकल्स (2006) ने बताया कि स्कूल के बाहर आयोजित गतिविधियों में भाग लेने से पहचान और प्रतिबद्धता को बढ़ावा मिल सकता है और विविध शैक्षणिक परिणामों को लाभ मिल

सकता है। वीस (2008) ने खेल गतिविधियों में भागीदारी और स्व-धारणाओं, सामाजिक रिश्तों और प्रभावकारिता जैसे संबंधों के बीच व्यापक संबंधों को प्रस्तुत किया। चेन और शेन (2004) ने अमेरिकी मिडिल स्कूल के छात्रों में विभिन्न शारीरिक शिक्षा इकाइयों में संगठित बाहरी स्कूल शारीरिक गतिविधि कार्यक्रमों और लक्ष्य अभिविन्यास और रुचि के बीच संबंधों की जांच की। इसमें उन्होंने पाया कि जिन बच्चों ने स्कूल के बाहर आयोजित शारीरिक गतिविधि कार्यक्रमों में भाग लिया, वे अपने गैर-प्रतिभागी समकक्षों की तुलना में कक्षाओं के दौरान शारीरिक रूप से अधिक सक्रिय थे।

इन शोध अध्यनों मार्श - क्लाइटमेन (2002); फ्रैडरिक्स इकल्स (2006); वीस (2008); चेन और शेन (2004) से स्पष्ट है कि विद्यालय के बाहर होने वाले गतिविधियाँ भी विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका रखती है। और जैसा कि नाइट (2006) कहते है, कि कोचिंग शिक्षक और शिष्य का एक गैर-मूल्यांकनात्मक शिक्षण संबंध है, जिसमें दोनों एक साथ सीखने के व्यक्त लक्ष्य को साझा करते हैं, इससे छात्र की उपलब्धि में सुधार होता है। इसलिए 'ध्वनि की पहचान और क्रम बताना' और किए गए अन्य सारे अभ्यास इसी तरह के संबंध थे; सिंह (1995) द्वारा वर्णित 'विद्यालय और घर की सांस्कृतिक ध्रुवीयता' को सीखने-सिखाने में सहायक बनाने कि कोशिश थी। इन सभी गतिविधियों के दौरान कोशिश रही कि संबंध शैक्षणिक रूप से गैर-मूल्यांकनात्मक रहे। और साथ ही यह भी ध्यान रखा गया कि विषय रोचक बना रहे, सीखने वाले का विषय जुड़ाव बना रहे, ये सारी प्रक्रिया आनंदमय हो, साथ ही ज़रूरी अभिप्रेरणा मिलती रहे ताकि अधिगम में कभी भी नीरसता ना आये।

नैतिक ज़िम्मेदारी को हमेशा प्रधान प्राथमिकता (APA, 1994) देते हुए 'ध्वनि को पहचानने एवं क्रम बताने के अभ्यास' को एक उपचारात्मक खेल के रूप में शुरू किया गया और कभी भी इसे नियंत्रित प्रयोग में नहीं बदला गया। अकुमार की बेहतरी ही एकमात्र उद्देश्य था, जिसे ध्यान में रखते हुए सारे अभ्यास को योजनाबद्ध किया गया; फिर सफलतापूर्वक निष्पादित किया गया। साथ ही वे सारे रास्ते जो उसकी बेहतरी के लिए सहायक हो सकते थे- सदैव खुला रहने दिया गया। शुरुआत में पेशेवर मनोवैज्ञानिक परामर्शदाता की सेवा लेने की बात कही गयी जो आर्थिक रूप से खर्चीली थी; अकुमार के परिवार/अभिभावक की आर्थिक क्षमता से बाहर थी, फलस्वरूप यह दो सत्र ही चली। इसके बाद से परामर्शदाता की भूमिका मुख्य रूप से

इस शोध पत्र के तीसरे लेखक ने निभाया। इसके लिए बनाई गयी सभी ज़रूरी रूपरेखा में उसके शिक्षिका और अभिभावक के सक्रिय भूमिका को निश्चित की गई और उनका भरपूर सहयोग भी मिला। साथ ही, गोपनीयता बनी रहे इस हेतु इस शोध के प्रतिवेदन में कूटनाम का प्रयोग किया गया है और जरुरी जगहों पर सांकेतिक भाषा का प्रयोग किया गया है।

'कठिनाई' ही रास्ता है

डिस्लेक्सिया जीवन-पर्यन्त रहने वाली समस्या है और जो बच्चे डिस्लेक्सिक होते हैं, उनमे यह परेशानी सामान्यत: उनके किशोरावस्था से लेकर वयस्कता तक रहती है ब्रक (1990); शेक्ट्ज व अन्य (1998); शेक्ट्ज व अन्य (1999)। ध्वनि विषयक सूचनाओं के प्रसंस्करण में परेशानी और असमर्थता डिस्लेक्सिया पीड़ित बच्चे की मुख्य पहचान है हीमदहल मेटसन, फिशवेन, रोल-पीटरसन (2010)। साथ ही कुमार (2000) के अनुसार भाषा संचार और सोचने का साधन, के साथ-साथ चीजों पर प्रतिक्रिया करने की युक्ति भी है। इस प्रकार से डिस्लेक्सिक बच्चों में 'अभिव्यक्ति की परेशानी' एक निहित समस्या बन जाती है। आगे यदि इस समस्या से उबरने की कला अगर डिस्लेक्सिक बच्चे को आ जाए तो वे अपनी विशिष्ट निहित क्षमता का उपयोग कर संभावित सफलता प्राप्त कर सकते है। यह कठिन है क्योंकि इसके लिए डिस्लेक्सिक बच्चों के भौतिक और सैद्धांतिक से ज़्यादा व्यावहारिक शिक्षा पर ज़ोर देना होगा। उपयोगितावाद के सिद्धांत पर आधारित पूर्णरूपेण व्यावहारिक शिक्षा ही डिस्लेक्सिक बच्चों को भावी जीवन स्वावलंबन के साथ जीने के लिए तैयार कर सकेगी।

डिस्लेक्सिया का कोई इलाज नहीं है, अत: इसे जानना ही किसी भी डिस्लेक्सिक के लिए इससे उबरने का एकमात्र सफल उपचार हो सकता है। एक शोध बसु व अन्य (2018), के अनुसार शिक्षकों की धारणाएं और दृष्टिकोण विशेष रूप से डिस्लेक्सिक बच्चों की सीखने और शैक्षणिक उपलब्धि में एक बड़ा अंतर बनाते हैं, और उन्हें 'पढ़ना सिखाने का कार्य'; बाकी सब दायित्वों से ज्यादा महत्वपूर्ण है। इस प्रकार सभी परिप्रेक्ष्यों का सम्मलित रूप से पड़ताल करने पर निष्कर्ष निकलता है कि किसी डिस्लेक्सिक बच्चे को मुख्यधारा में समायोजन एक चुनौती-पूर्ण काम है एवं इस हेतु सभी संबंधित लोगों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। डिस्लेक्सिया या अन्य किसी भी सीखने संबंधित समस्या हेतु नैदानिक कदम अतिशीघ्र उठाने की

आवश्यकता होती है। ऐसे हस्तक्षेप-कार्यक्रम विद्यालयी स्तर पर सुलभता से उपलब्ध होने चाहिए ताकि बच्चों की ज़रूरतों के अनुरूप आवश्यक सहायता यथाशीघ्र मिल सके। विशेष शैक्षिक आवश्यकताओं वाले बच्चों के साथ विशेष व्यावहारिक संबंध की जरुरत सभी स्तरों (व्यक्तिगत, घरेलू, विद्यालयी, सामाजिक) पर होती है; ताकि विभिन्न स्तरों पर जरुरी शैक्षिक ज़रूरतों को समाविष्ट किया जा सके और साथ ही आवश्यक अपेक्षित मनोवैज्ञानिक मदद समय पर प्रदान की जा सके। जैसा कि अकुमार के मामले में 'ध्वनि पहचानना एवं सही क्रम बताना' का एक अभ्यास उसके

परिशिष्ट

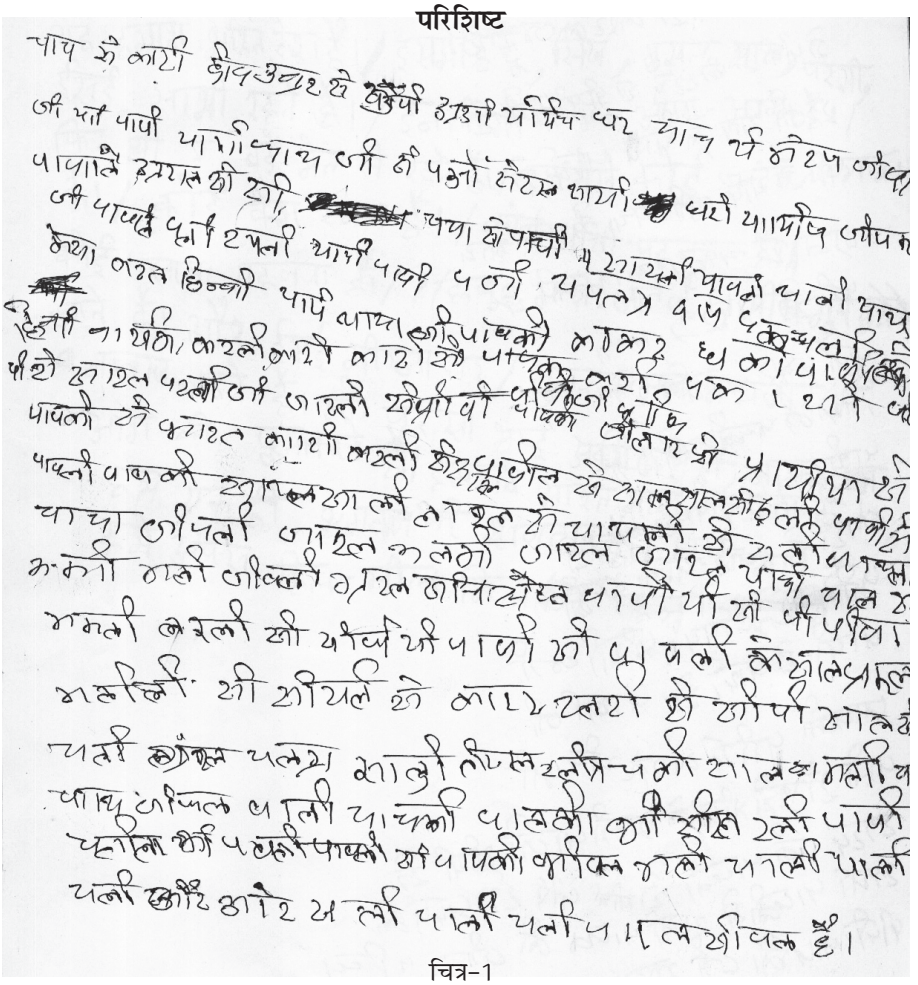

चित्र-1

चित्र–2

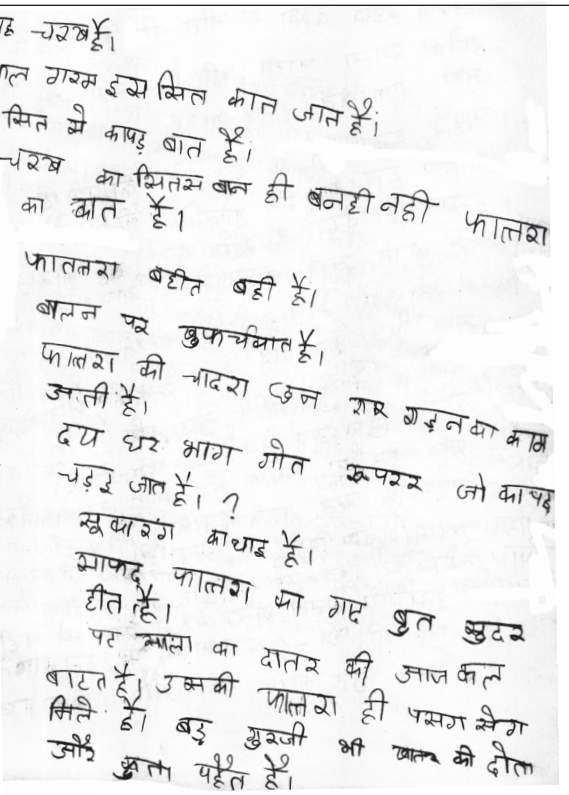
यह चरखा है।
फाल गरम इस मिल कात जात है।
मिल मे कापड़ बात है।
चरखे का मिलस बन ही बनही नही फातरा
का बात है।
फातरा बहीत बही है।
बातन पर छुपाचबात है।
फातरा की चादरा छन शर गड़नका काम
जाती है।
दय धर भाग गीत रूपरर जो काचड़
चड़ड़ जात है। ?
सूखारंग काचाड़ है।
आपाद फातरा का गए भुत छुटर
हीत है।
पर आसा का दातर की आज कल
बाटत है। उसकी फातरा ही पसग सेग
मिले है। बड़ छुरजी भी खाने की दीता
जौर छुता पहीत है।

चित्र–3

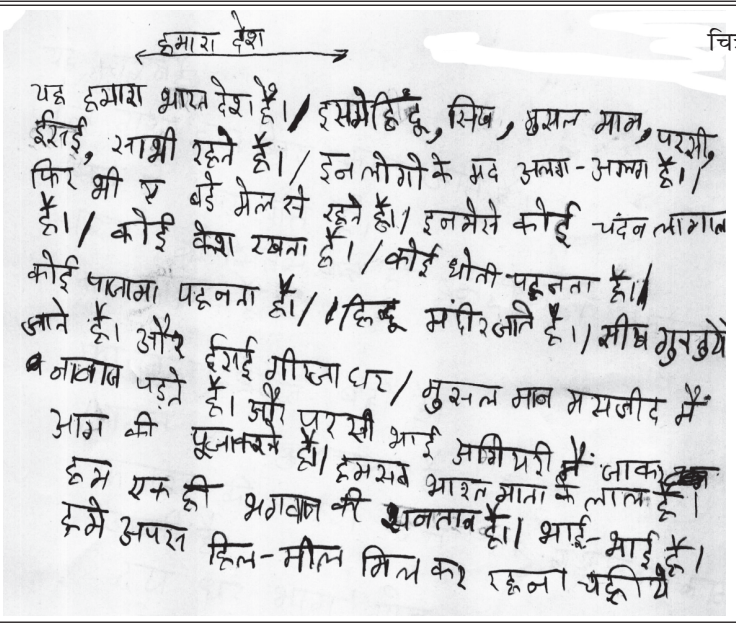
हमारा देश
यह हमारा भारत देश है। / इसमेंहिंदू, सिख, मुसलमान, परसी,
ईसाई, सभी रहते है। / इन लोगो के मद अलग-अलग है। /
फिर भी ए बई मेल से रहते है। / इनमेसे कोई चंदन लगाता
है। / कोई वेश रखता है। / कोई धोती पहनता है। /
कोई पजामा पहनता है। / हिन्दू मंदिर जाते है। / सीख गुरुद्वारे
जाते है। और ईसाई गीरजा घर / मुसलमान मसजीद में
नमाज पड़ते है। जो घर से आई आगीपरी है आक
आग की पूजा करते है। हमसब भारत माता के लाल है।
हम एक ही भगवान की संतान है। भाई-भाई है।
हमे अपस हिल-मील मिल कर रहना चहीये

डिस्लेक्सिया की परेशानियों से उबरने की कोशिश का शुरुआत बना। ठीक उसी प्रकार अन्य डिस्लेक्सिक या अन्य 'सीखने संबंधित समस्या' वाले बच्चों के लिए 'विशिष्ट एवं व्यक्तिगत अभ्यास की योजना' का प्रारूप तैयार कर उन्हें मुख्यधारा में लाने की पहल की जा सकती है। वर्तमान शैक्षणिक व्यवस्था में यह काफी कठिन कार्य है और इस कठिनाई के रास्ते को तय करते हुए जब हम सक्रियता और सहभागिता से परिवार एवं विद्यालय में विशेष शैक्षिक आवश्यकताओं वाले बच्चों को व्यक्तिगत स्तर पर आत्मनिर्भर बनाने की बुनियाद रख सकेंगे तभी आगे चलकरये बच्चे भी सुदृढ़-समता युक्त समाज के मजबूत स्तंभ के रूप में अपनी भूमिका सुनिश्चित कर सकेंगे। परिणामत: हाशिये पर आबादी कम होगी और वर्तमान व्यवस्था सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से और अधिक समावेशी बन सकेगी।

संदर्भ

अमेरिकन साइकेट्रिस्ट एशोसिएशन. (1994). *डायग्नोस्टिक एंड स्टेटिस्टिकल मैनुअल, मैन्टल डिस्आर्डर* (संस्करण 4) वाशिंगटन, डीसी: एपीए

एंडरमैन, ई., एंड वल्टर्स, सी. (2006). गोयल, वैल्यू, एंड अफैक्ट. इन पी. अलैक्जेण्डर एंड पी. विन्न (सं.), *हैण्डबुक आफ एजुकेशनल सायकोलॉजी* (वाल्यूम 2, पीपी. 369-389). महवाह, एनजे: एर्लबौम पब्लिशर्स

बेकर, एस., गर्सटेन, आर., एंड ग्राहम, एस. (2003). टीचिंग एक्सप्रैसिव रायटिंग टू स्टूडेंट्स विद लर्निंग डिसैबिलिटीज: रिसर्च-बेस्ड एप्लीकेशंस एंड एक्जाम्पल्स. *जर्नल आफ लर्निंग डिसैबिलिटीज,* 36(2), 109-123.

बसु, एस.सी., पूनम एंड बेनीवाल, ए. (2018). एनरिच द लर्निंग इनवायरमेंट बिफोर एनी डिस्लेक्सिस चाइल्ड लीव स्कूल. *जर्नल आफ इश्यू एंड आइडियाज इन एजुकेशन,* 6(2), 173-182 रिट्रीव फ्रॉम http://dspace.chitkara.edu.in/jspui/bitstream/123456789/778/1/006_IIE.pdf

बेनॉट, एस. (2009). *सामाजिक रूप से कुसमायोजित बालक: अवधारणा, पहचान एवं उपचार.* नई दिल्ली, कनिष्का पब्लिशर्स

ब्रुक, एम. (1990). वर्ड-रिकॉगनिशन स्किल आफ एडल्ट विद चाइल्डहुड डायग्नोसिस आफ डायलेक्सिया. *डवलपमेंटल सायकोलॉजी,* 26(3), 439-454

चेन, के., एंड बिगनैल, एस. (2014). रीडिंग एंड लिसनिंग कम्प्रेहैन्सन एंड देअर रिलेशन टू इन्टैशन एंड हाइपरएक्टिविटी. *ब्रिटिश जर्नल आफ एजुकेशनल सायकोलॉजी,* 84(1), 108-124

चेन, ए., एंड शेन, बी. (2004). अ वैब आफ अचीविंग इन फिजिकल एजुकेशन: गोल्स, इन्ट्रैस्ट, आउटसाइड-स्कूल एक्टिविटी एंड लर्निंग. *लर्निंग एंड इंडिविजुअल डिफरैन्सेज,* 14(3), 169-182

क्लार्क, सी.एम., एंड पीटरसन, पी.एल. (1986). टीचर्स थॉट प्रोसेसेज. इन एम.सी. विट्रॉक (सं.) *हैण्डबुक ऑन रिसर्च ऑन टीचिंग* (संस्करण 3) न्यूयार्क : मैकमिलन.

फ्लैचर, जे.एम., फ्रॉन्सिस, डी.जे., रौरके, बी.पी., शेविट्ज, एस.ई., एंड शेविट्ज़, बी.ए. (1992). द वैलिडिटी आफ डिस्क्रैपन्सी-बेस्ड डेफिनिशंस आफ रीडिंग डिस्ऐबिलिटीज. *जर्नल आफ लर्निंग डिसैबिलिटीज,* 25(9), 555-561.

फ्रेडरिक्स, जे.ए., एंड एकेल्स, जे.एस. (2006). इज एक्स्ट्राकरिकुलर पार्टीसिपेशन एसोशिएटेड विद बेनिफिसियल आउटकम? करैंट एंड लांगिच्युडिनल रिलेशन्स. *डवलपमेंटल सायकोलॉजी,* 42(4), 698-713.

फ्रीथ, यू.ई. (1980). कॉगनिटिव प्रोसेस इन स्पैलिंग. इन यू.ई. फ्रिथ (सं.), *अनएक्पैक्टेड स्पैलिंग प्राब्लम्स* (पीपी. 495-515). लन्दन: एकेडमिक प्रैस.

गैजेल्स, जे.डब्ल्यु., एंड जैक्शन, पी.डब्ल्यु (1962) क्रिएटिविटी एंड इटैलीजेंस: एक्सप्लोरेशंस विद गिफ्टेड स्टूडेंट्स. न्यूयार्क: वैली

ग्राहम, एस. (1990). द रोल आफ प्रोडक्शन फैक्टर्स इन लर्निंग डिसेबल्ड स्टूडेंट्स कम्पोजिशन्स. *जर्नल आफ एजुकेशनल सायकोलॉजी,* 82(4), 781-791.

गैस्टफ्शन, एस., एंड सैम्युलसन, एस. (1999). इंटैलीजैन्स एंड डायसलेक्सिया: इम्प्लीकेशंस फार डायग्नोसिस एंड इंटरवेंशन. *स्कैंडिनेवियन जर्नल आफ सायकोलॉजी,* 40(2), 127-134. doi:10.1111/1467-9450.00109

हैमडल-मैटसन, ई., फिक्बैन, एस., एंड रोलपिर्टसन, एल. (2010). स्टूडेंट्स विद रीडिंग डिफकल्टीज़/डायलेक्सिया: ए लांगिश्यूडिनल स्वीडिश एक्जाम्पल. *इंटरनेशनल जर्नल आफ इन्क्लूसिव एजुकेशन,* 14(8), 813-827 doi:10.1080/13603110902721662

कलौया, जी.एस., बसु, एस.सी., एंड बसु, एस.सी. (2017). अकादमिक अचीवमेंट, बिहेवियरल एंड इमोशनल प्राब्लम अमंग मार्जिनाइलिज्ड चिल्ड्रेन. द इंटरनेशल जर्नल आफ इंडियन सायकोलॉजी, 4(3), 36-49. रिट्रीव्ड फ्राम http://www.ijip.in/Archive/v4i3/18.01.085.20170403.pdf DIP: 18.01.085/20170403

कीन, एम.टी. (2015). क्रिएटिविटी: गैप अनालिसिस. इन जे.ए. मंजली एंड बी. इन्दूरेखा (सं.), *कॉगनिटिव, एक्सपीरियंस एंड क्रिएटिविटी (पीपी. 108-134). न्यू दिल्ली, इंडिया: ओरियंट ब्लैकस्वान*

नाईट, जे. (2006) इंटरनेशनलाइजेशन आफ हायर एजुकेशन: न्यू डायरैक्शंस, न्यू चैलेंजेज. 2005 आईएयू ग्लोबल सर्वे रिर्पोट, इंटरनेशनल एसोशिएसन आफ युनिवर्सिटीज (आईएयू)

कुमार, के. (2000). द *चाइल्ड्स लैंग्वेज़ एंड द टीचर: अ हैण्डबुक* (द्वितीय संस्करण). न्यू दिल्ली, इंडिया: नेशनल बुक ट्रस्ट

लेसौक्स, एन.के., लिप्का, ओ., एंड सैजल, एल.एस. (2006). इंवैस्टीगेटिंग कॉगनिटिव एंड लिंग्विस्टिक एबिलिटीज़ दैट इन्फ्लूएंस द रीडिंग कम्प्रेहैन्सन स्किल्स आफ चिल्ड्रेन फ्राम डायवर्स लिंग्विस्टिक बैकग्राउण्ड्स. रीडिंग एंड राइटिंग, 19(1), 99-131. doi:10.1007/s11145-005-4713-6

मार्श, एच., एंड क्लैटमन, एस. (2002). एक्स्ट्राकरिकुलर स्कूल एक्टिविटीज: द गुड, द बैड, एंड द नॉनलिनियर. *हार्वर्ड एजुकेशनल रिव्यु,* 72(4), 464-514. doi:10.17763/haer.72.4.051388703v7v7736

मैककार्थी, आर.ए., एंड वारिंगटन, ई.के. (2013). *कॉगनिटिव न्यूरोसायकोलॉजी: ए क्लीनिकल इंट्रोडक्शन* (द्वितीय संस्करण). सन दैगो: एकेडमिक प्रैस.

आर्मोड, जे.ई. (2000). *एजुकेशनल साइकोलॉजी: डवलपिंग लर्नरस्* (तृतीय संस्करण). ओहियो: मैरिल प्रैन्टिस-हॉल

पटेल, पी.जी. (2004). *रीडिंग एक्वीजिशन इन इंडिया: मॉड्ल्स आफ लर्निंग एंड डायसलेक्सिया.* थाउजन्ड ओक्स, सीए: सेज.

पियंटा, आर.सी., हॉमरे, बी., एंड स्टलमैन, एम. (2003). रिलेशनशिप्स बिटवीन टीचर्स एंड चिल्ड्रेन. इन डब्ल्यु.एम. रेनॉल्ड्स, जी.ई. मिलर, एंड आई.बी. वैनर (सं), *हैंडबुक आफ सायकोलॉजी* (7 एड. पीपी. 199-234). होबोकन, एनजे: वैले

सैम्यूलसन, एस., बायन्ड, बी., कार्विन, टी. फिनस्ट्रोम, ओ., गैडलिन, पी., लैजन, आई., वाँगार्ड, ओ. (1999). द प्रेवेलेंस आफ रीडिंग डिसैबिलिटी अमंग वैरी-लो-बर्थ-वेट चिल्ड्रेन एट 9 ईअर आफ एज-डायलेक्सिस और पुअर रीडर्स? *डालेक्सिया,* 5(2), 94-112

सेविट्ज, एस.ई., फ्लैक्चर, जे.एम. हॉल्हन, जे.एम., स्नाइडर, ए.ई., मैकेन, के.ई., स्चुबिंग, के. के., सेविट्ज बी.ए. (1999). परसिस्टेंस ऑफ डायलेक्सिया: द कनैक्टीकटलांहियूडिनल स्टडी एट एडोलेसेंस. *पैडिएट्रिक्स* 104(6), 15351-15359

सेविट्ज, एस.ई., सेविट्ज बी.ए., पग, के.आर., फलब्राइट, आर.के., कंस्टेबल, आर.टी., मैंकल, डब्ल्यु.ई., ... गोरे, जे.सी. (1998). फंक्शनल डिस्रपशन इन द आग्रेनाइजेशन आफ द ब्रेन फार रीडिंग इन डायलेक्सिया. *न्यूरोबायलॉजी,* 95(5), 2636-2641 https://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC19444/

सीगल, एल.एस. (1992). एन इवाल्यूशन आफ द डैप्रीसिएन्सी डैफिनिट चह डिस्लेक्सिया. *जर्नल आफ लर्निंग डिसएबिलिटीज़,* 25(10), 618-629.

सीगल, एल.एस. (2006). पर्सपेक्टिव आन डिस्लेक्सिया. *पेडिएट्रिक्स एंड चाइल्ड हैल्थ,* 11(9), 581-587। Https://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC2528651/ से लिया गया

सिंह, ए.के. (1995). द कल्चर ऑफ कन्स्ट्रक्शन आफ होम एंड स्कूल नॉलेज इन ट्राइबल इंडिया. पर्सपैक्ट्स 25(4), 735–747.

सौसा, डी.ए. (2001). *मस्तिष्क कैसे सीखता है: एक कक्षा शिक्षक का मार्गदर्शक* (दूसरा संस्करण). थाउजंड्स ओक्स: कोरविन प्रैस इंक.

सौसा, डी.ए. (2016)। *मस्तिष्क को कैसे सीखने की जरूरत है* (तीसरा संस्करण). थाउजंड्स ओक्स: कोरविन प्रैस इंक.

टालल. पी. (1980). बच्चों में अस्थायी लौकिक धारणा, धवनि विज्ञान और पढ़ने की अक्षमता. ब्रेन एंड लैंग्वेज, 9(2), 182–198.

वेल्लुटिनो, एफ.आर., स्केनलोन, डी.एम., सिपय, ई.आर., स्माल, एस.जी., प्रैट, ए., चेन, आर., और डेनक्ला, एम.बी. (1996). कॉगिनिटिव प्रोफाइल्स आफ डिफिकल्ट्स टू-रेमेडिएट एंड रेडिली रेमेडिऐट पुअर रीडर्स: अर्ली इंटरवेंशन एज ए वहिकल फार डिस्टिंग्वसिंग बिटवीन कॉग्निटिव एंड एक्सपेरिशिअल डेफिसिट एज बेसिक कोर्स आफ स्पेसिफिक रीडिंग डिसेबिलिटी. *जर्नल ऑफ एजुकेशनल साइकोलॉजी,* 88 (4), 601–638

वेल्लुटिनो, एफ.आर., स्केनलोन, डी.एम., और ल्योन, जी.आर. (2000). डिफरैंशिएअिंग बिटवीन डिफिकल्ट्स टू-रेमेडिएट एंड रेडिली रेमेडिऐट पुअर रीडर्स: मोर एवीडेंस अगेन्स्ट द आई.क्यू. अचीवमेंट डिस्क्रेपेंसी डेफिनिशन आफ रीडिंग डिसेबिलिटी. जर्नल ऑफ लर्निंग डिसएबिलिटीज़, 33(3), 223–238.

वलाच, एम.ए., और कोगन, एन. (1965). *छोटे बच्चों में सोचने के तरीके: रचनात्मकता-बुद्धि भेद का अध्ययन.* न्यूयार्क: होल्ट, राइनहार्ट और वाशिंगटन, इंक.

वलाच, एम.ए., और विंग, सी. (1969). *प्रतिभाशाली छात्र* न्यूयार्क: होल्ट, राइनहार्ट और वाशिंगटन।

वलाच, एम.ए. (1971). बुद्धि/रचनात्मकता का भेद. न्यूयार्क: जनरल लर्निंग प्रैस।

वीस, एम. (2008). 'सपनों का क्षेत्र:' युवा विकास के लिए एक संदर्भ के रूप में खेल. *व्यायाम और खेल के लिए अनुसंधान,* त्रैमासिक, 79(4), 434–449.

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 25, अंक 3, दिसंबर 2018

शैक्षिक दस्तावेज़ों में परीक्षा का स्वरूप

ऋतु बाला*

सारांश

भारत के शैक्षिक परिदृश्य में परीक्षा नामक परिघटना जैसी शायद ही कोई परिघटना हो जो लगभग डेढ़ शताब्दी से आलोचना के घेरे में रहकर भी अपनी केन्द्रीय उपस्थिति बनाए रखे। आजादी से पूर्व तथा आजादी के बाद शिक्षा को लेकर जितनी समितियाँ एवं आयोग आए, लगभग सभी ने इस परीक्षा को बदले जाने की सिफारिशें कीं। बदलाव भी प्रसाधनमूलक नहीं बल्कि चरित्रगत। फिर भी यह परीक्षा की जड़ों की मजबूती का ही प्रमाण है कि सन 2010 में केन्द्रीय माध्यमिक परीक्षा बोर्ड (सीबीएसई) द्वारा परीक्षा में लाया गया बदलाव भी कुछ ही वर्षों में पलट लिया गया और परीक्षा फिर से अपने पुराने रूप में ही बहाल हो गई। प्रस्तुत शोध-पत्र पिछली डेढ़ शताब्दी में समय-समय पर गठित शिक्षा आयोगों एवं समितियों के परीक्षा संबंधी विमर्श को पड़ताल की विषयवस्तु बनाता है। यह पड़ताल इसलिए ताकि परीक्षा के विमर्श को ऐतिहासिकृत रूप से समझा जा सके। यह देखा जा सके कि वर्तमान परीक्षा की खूबियों एवं खामियों को लेकर ऐतिहासिक शैक्षिक दस्तावेजों में क्या समझ रही है। दस्तावेजों ने परीक्षा के किन-किन आयामों को अपनी आलोचना का क्षेत्र बनाया है और किन पर विमर्श छूटा हुआ है। दूसरे शब्दों में कहें तो यह शोध पत्र ऐतिहासिक शैक्षिक दस्तावेजों में परीक्षा-विषयक विमर्श की सीमाओं को भी रेखांकित करने का प्रयास करता है।

---

*शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रस्तावना

परीक्षा का इतिहास देखने पर यह पता चलता है कि परीक्षा अपने आरंभ से ही आलोचना की ज़द में रही है। सन् 1857 में मद्रास, कलकत्ता एवं बॉम्बे में एक-एक विश्वविद्यालय की स्थापना के साथ ही परीक्षा ने जड़ें जमाईं और वहीं से परीक्षा के उद्देश्यों, प्रासंगिकता और सार्थकता को लेकर सवाल खड़े किए जाने लगे। *लार्ड कर्ज़न रिज़ोल्यूशन, हंटर कमीशन* तथा *भारतीय विश्वविद्यालय आयोग* ने परीक्षा-प्रणाली से गहरा असंतोष जताते हुए उसमें बड़े परिवर्तनों के सुझाव दिए। शिक्षा से संबंधित समितियाँ, आयोगों के जिन दस्तावेज़ों में परीक्षा पर विचार-विमर्श मिलता है, उसे यहाँ दो खण्डों में बांटकर देखा जा रहा है – पहले में आज़ादी से पूर्व के दस्तावेज़ और दूसरे में आज़ादी के बाद के दस्तावेज़। आज़ादी के पूर्व के दस्तावेज़ों को द्वितीयक स्रोतों से एवं आज़ादी के पश्चात् के कुछ चुने हुए दस्तावेज़ों को प्राथमिक स्रोतों से अध्ययन किया गया है। यहाँ आज़ादी से पूर्व के दस्तावेज़ों पर एक द्रुत पुनरावलोकन तथा आज़ादी के बाद के दस्तावेज़ों पर विस्तार से विचार किया जा रहा है। आज़ादी से पूर्व के दस्तावेज़ों में हैं – *हंटर कमीशन (1852), वुड डिस्पैच (1854), भारतीय विश्वविद्यालय आयोग* (1902), *लार्ड कर्ज़न रिज़ोल्यूशन (1904),* सन् 1913 का *रिजोल्यूशन, कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग* (1917-19), *हारटॉग कमेटी (1929), सप्रू कमेटी* (1934), *सारजेन्ट रिपोर्ट।* आज़ादी के बाद के दस्तावेज़ों में है – *प्रोविन्सियल कमेटी (1948), विश्वविद्यालय आयोग* (1948-49), *माध्यमिक शिक्षा आयोग* (1952-53), माध्यमिक शिक्षा पुनर्गठन पर 1953 की यू.पी. कमेटी, *अन्तर्राष्ट्रीय टीम* की रपट (1954), *ऑल इण्डिया कॉउन्सिल फॉर सेकेन्डरी एजुकेशन (1955), भोपाल सेमिनार* (1956), डॉ. बी.एस. ब्लूम का आगमन (1957-58), *फस्ट कान्फ्रेंस ऑफ चेयरमैन एण्ड सेक्रेटरीज* (1957), *इस्टाब्लिसमेन्ट ऑफ पायलेट यूनिट* (1958), *सेकेण्ड, थर्ड एण्ड फोर्थ कान्फ्रेंस* (1958, 1959, 1961), *एन.सी.ई.आर.टी. एण्ड एग्ज़ामिनेशन रिफॉर्म* (1961), *शिक्षा आयोग* (1964-66), *राष्ट्रीय शिक्षा नीति* (1968), *वी.के.आर. राव कमेटी ऑन एग्ज़ामिनेशन* (1972), *यूनिवर्सिटी एग्ज़ामिनेशन रिफॉर्म एक्शन प्लान (1972), द करिकुलम फॉर दि टेन इयर स्कूल : ए फ्रेमवर्क* (1975), *एप्रोच पेपर ऑन टेन इयर स्कूल, एप्रोच पेपर ऑन +2 स्टेज (1976), नेशनल करिकुलम फॉर प्राइमरी एण्ड सैकण्डरी एजुकेशन* (1985), *राष्ट्रीय शिक्षा नीति* (1986) *एवं उसकी कार्य-योजना, चट्टोपाधयाय समिति* (1986), *केब* की रपट (1989), *राष्ट्रीय शिक्षा नीति* (1992) एवं *उसकी कार्य योजना, काउंसिल ऑफ बोर्ड्स ऑफ स्कूल*

एजुकेशन इन इण्डिया (1990), राममूर्ति समिति (1990), *यशपाल समिति* की रपट (1993), *प्रारंभिक तथा माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा* (1988), *स्कूली शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा* (2000), *उच्च शिक्षा पर यशपाल समिति* की रपट (2009), *परीक्षा प्रणाली में सुधार, राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार-पत्र* (2005) तथा *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा* (2005)।

शिक्षा आयोगों एवं समितियों में परीक्षा का विमर्श

1857 में बॉम्बे, कलकत्ता एवं मद्रास विश्वविद्यालय की स्थापना के साथ ही प्रवेश परीक्षा भी आरंभ हुई और इसका आधार वुड डिस्पैच (1854) की सिफारिश थी। प्रवेश परीक्षा का मुख्य उद्देश्य था– स्कूल से उच्च शिक्षा के लायक विद्यार्थियों का चयन, इसका परिक्षेत्र केवल अकादमिक था, जिसका जीवन से कोई संबंध नहीं था। इस प्रकार पहली जनपरीक्षा का विश्वविद्यालय में प्रवेश विद्यार्थियों को यह प्रमाणित करने के लिए हुआ कि वे विश्वविद्यालय में दाख़िला ले सकते हैं। परीक्षा के ज़रिए प्रमाणन का यह काम विषयों की जानकारी के लिए भी हुआ। हंटर कमीशन (1852) ने माध्यमिक शिक्षा के सर्वेपूर्ण दो तरह के रास्ते सुझाए। पहला जो प्रवेश परीक्षा की ओर ले जाता है और दूसरा जो व्यावसायिक उद्यम की तरफ़। पर मुश्किल से ही किसी प्रांत ने व्यावसायीकरण को अपनाया और शिक्षा पूरी तरह से मैट्रिक परीक्षा के वर्चस्व में मुख्यत: अकादमिक ही बनी रही। भारतीय विश्वविद्यालय आयोग (1902) ने पाया कि भारत में पारंपरिक सामान्य शिक्षा के बरअक्स परीक्षा, शिक्षा पर अपनी दबंगता इस तरह से हासिल करने लगी कि वह सामान्य शिक्षा का साधन बन गई। परीक्षा परिणाम के आधार पर किसी स्कूल के निष्पादन के आकलनपूर्वक इसे वित्तीय सहायता देने की परिघटना ने इसे और भी गंभीर बना दिया। 1913 के *रिज़ोल्यूशन* ने यह पाया कि माध्यमिक शिक्षा में अभूतपूर्व विस्तार के साथ ही इसकी गुणवत्ता में गिरावट आई है। इसके मद्देनज़र उसने बाह्य परीक्षा की भूमिका को तो सराहा पर यह अवधान भी कराया कि चूँकि बाह्य परीक्षा विद्यार्थियों के दिन-प्रतिदिन की प्रगति का हिसाब नहीं रख सकती इसलिए बाह्य परीक्षा से पहले आंतरिक आकलन को पूर्व शर्त बना दिए जाने की बात कही। इस प्रकार बाह्य एवं आंतरिक आकलन के संयुक्त रूप की सिफारिश की गई।

कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग (1917-19) ने वर्तमान परीक्षा व्यवस्था से असंतोष जताते हुए कुछ विकल्प भी सुझाए। इसमें प्रमुख है– वैकल्पिक प्रश्नपत्र,

अंक देने की यांत्रिक व्यवस्था, अनुकंपा अंक तथा परीक्षा की बारंबारता को बढ़ाना। हारटॉग कमेटी (1929) ने शिक्षा में परीक्षा के आग्रह का विरोध किया। इसने यह पाया कि मैट्रिक परीक्षा का दबदबा माध्यमिक कोर्स पर बना हुआ है। कमेटी ने इस बात की आलोचना की कि आज स्कूल परीक्षा विश्वविद्यालय प्रवेश परीक्षा द्वारा संचालित हो रही है। उसने यह पाया कि यह प्रक्रिया विद्यार्थियों को उद्योग, व्यापार, वाणिज्य जैसे विषयों को लेने का अवसर नहीं दे रही है। बाद में सार्जेंट प्लान (1944) भी कुछ इसी तरह के निष्कर्ष पर पहुँचा। उसने यह माना कि उच्च माध्यमिक परीक्षा विश्वविद्यालय प्रवेश परीक्षा की सेवा कर रही है। 1948 की *प्रोविन्सियल कमेटी* ने बाह्य परीक्षा के अलावा लिखित, मौखिक, अभिरुचि परीक्षा को स्थापित करने का सुझाव दिया व साथ में परीक्षा ब्यूरो स्थापित करने का भी। समिति ने लिखित परीक्षा के दायरे में आने वाले पहलुओं का भी रिकार्ड रखने का सुझाव दिया। 1953 की माध्यमिक शिक्षा पुर्नगठन पर यू.पी. कमेटी ने सुझाव दिया कि सत्र के दौरान शिक्षक द्वारा किए गए आकलन से बाह्य परीक्षा को स्थानान्तरित किया जाए तथा शिक्षकों द्वारा मूल्यांकन के लिए अपनाए गए मानकों का भी संयोजन किया जाए। सन् 1954 की रिपोर्ट ऑफ इन्टरनेशनल टीम ने वस्तुनिष्ठ टेस्ट स्थापित करने का सुझाव दिया। सन् 1956 के भोपाल सेमिनार में निबंधात्मक प्रश्नों के साथ, लघु उत्तरीय तथा वस्तुनिष्ठ प्रश्नों को शामिल करने तथा संचयी रिकार्ड पर आधारित 20 प्रतिशत सत्रकालीन कामों को महत्ता देने की बात भी कही। सन् 1957 की एक कांफ्रेंस में डॉ. ब्लूम (प्रधान परीक्षक, शिकागो विश्वविद्यालय) ने अपनी एक कार्य-योजना रखी और मूल्यांकन को सम्पूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया का अभिन्न अंग माना। सन् 1971 में वी.के.आर.वी. राव परीक्षा समिति ने परीक्षा केन्द्र पर लोगों के जमावड़े, हथियारों की उपस्थिति पर चिंता जताई और स्पॉट मूल्यांकन के साथ-साथ प्रमाण-पत्र पर दो कॉलम के प्रावधान रखे जाने का सुझाव दिया। जिसमें एक कॉलम बाह्य परीक्षा का और दूसरा कॉलम आंतरिक मूल्यांकन के लिए रखा। कमेटी ने ज़ोर देकर यह कहा कि कॉलेज या संस्थान अपने यहाँ प्रवेश की परीक्षा खुद लें न कि वह स्कूल परीक्षा पर निर्भर रहें। कमेटी ने एक प्रश्न की जगह बहुपत्र के निर्माण का भी सुझाव दिया। इस दस वर्षीय स्कूल पर एप्रोच पेपर, 1975 (मिनिस्ट्री ऑफ एजुकेशन, समाज कल्याण तथा रा.शै.अ.प्र.प. के संयुक्त तत्वावधान में) ने यह माना कि मूल्यांकन को अध्ययन-अध्यापन के लिए पृष्ठ पोषण देने वाला होना चाहिए।

उसने यह माना कि एक ही बार में विद्यार्थी सारे विषयों में पास हो यह ज़रूरी नहीं। इसमें पास-फेल नामक दो श्रेणियों से इंकार करते हुए ग्रेडिंग की सिफारिश की गई। बाह्य परीक्षा के अलावा अवलोकन, मौखिक परीक्षा, प्रायोगिक परीक्षा के समन्वित रूप को परीक्षा माना गया। इस पेपर में सतत् मूल्यांकन की सिफारिश भी की गई। इसमें यह सुझाया गया कि आंतरिक मूल्यांकन के अंग के रूप में बौद्धिक तथा बौद्धिकेत्तर क्षेत्र के निष्पादन का विषयवार रिकार्ड रखा जाना चाहिए। इसमें बाह्य परीक्षा को आन्तरिक परीक्षा के ज़रिए स्थानापन्न कर देने का विचार भी दिया गया। इसमें यह सुझाव भी दिया गया कि ज़िला शिक्षा अधिकारी/इंस्पेक्टर एक ऐसी कमेटी का गठन करे जो बतौर नमूने प्रश्नपत्र की तथा उत्तर-पुस्तिका की जाँच करे ताकि पूर्वाग्रह की रोकथाम की जा सके और उचित मूल्यांकन की आश्वस्ति प्राप्त की जा सके। उसने यह सुझाव दिया कि मूल्यांकन के तौर-तरीकों एवं उसकी प्रयोजनीयता से परिचित रखने के लिए समय-समय पर समुदाय की बैठकें आयोजित की जानी चाहिए। +2 स्तर के एप्रोच पेपर में यह माना गया कि उच्च माध्यमिक स्तर पर जन परीक्षा को हटाया जा सकता है। दो से लेकर छः सेमेस्टर की लचीली पद्धति अपनाई जा सकती है और सात बिन्दु के स्केल पर विद्यार्थियों के निष्पादन को ग्रेड करके उनका लेखा-जोखा रखा जा सकता है। इसमें यह माना गया कि प्रमाण-पत्र हासिल करने के लिए विद्यार्थी का क्षमता के एक ख़ास स्तर पर पहुँचना ज़रूरी है। इस संबंध में विद्यार्थी ख़ास कोर्स में क्रेडिक प्वाइंट प्राप्त करें। विषयवार संचयी क्रेडिट प्वाइंट की व्यवस्था की जानी चाहिए। इस क्रम में यह तय किया जा सकता है कि +2 पास करने के लिए कितने क्रेडिट की ज़रूरत है।

सितम्बर 1978 में एच. एस. श्रीवास्तव, प्रीतम सिंह एवं बी. एस. आनंद द्वारा लिखे गए एवं एनसीईआरटी द्वारा प्रकाशित दस्तावेज़- *रिफॉर्मिंग एग्जामिनेशन्स: सम इमर्जिंग कन्सेप्ट्स*-में स्थापित किया गया है कि बाह्य परीक्षा को ख़त्म करके उसकी जगह शिक्षक द्वारा किए जाने वाले सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन की ज़रूरत है, पास-फेल एवं डिविजन को भी ख़त्म करके इसकी जगह विभिन्न विषयों में उपलब्धि तथा दक्षता के स्तर का मूल्यांकन ग्रेडिंग प्रणाली के आधार पर किया जाना चाहिए। यह दस्तावेज़ परीक्षा की पवित्रता एवं परीक्षा-परिणाम की अपलटनीयता तथा हर जगह उसकी प्रयोगनीयता पर आक्रमण करता है। वह यह मानता है कि मूल्यांकन का इस्तेमाल विद्यार्थी के निष्पादन को बढ़ाने वाला होना चाहिए न कि महज़ उसका अंकन करने वाला। यह दस्तावेज़ यह सिफारिश करता है कि परीक्षा को मूल्यांकन की स्वेच्छाचारिता

से व्यवस्थागत मूल्यांकन की ओर जाने वाला, विद्यार्थी की महज अकादमिक उपलब्धि के मूल्यांकन की जगह उसके अकादमिक एवं अकादमिकेत्तर विकास का मूल्यांकन करने वाला, सावधिक मूल्यांकन से सतत् मूल्यांकन की ओर ले जानेवाला, जाँच के सीमित प्रयोग से व्यापक प्रयोग की ओर ले जाने वाला मूल्यांकन की कुछ तकनीक की जगह मूल्यांकन की प्रचुर विभिन्नता की ओर ले जाने वाला, उपलब्धि आकलन की जगह उपलब्धि सुधार की दिशा में मूल्यांकन को ले जाने वाला, टेस्ट के एकांतिक प्रयोग की जगह पाठ्यचर्या के अन्य तत्वों के साथ संबंध में मूल्यांकन का प्रयोग चलाने वाला, अंक से ग्रेड की ओर वह भी विषयवार ग्रेड की ओर ले जाने वाला, एक ही बार में परीक्षा पास करने की विकल्पहीनता की जगह खण्डों में पास करने का विकल्प करने वाला, परीक्षा परिणाम की अपलटनीयता की जगह परीक्षा परिणाम की पलटनीयता को क़ायम करने वाला होना चाहिए। यह दस्तावेज़ यह मानता है कि परीक्षा से 'संयोग' के तत्व को ख़त्म एवं सब्जेक्टिविटी के तत्त्व को कम किए जाने की ज़रूरत है। वह यूनिट टीचिंग, यूनिट टेस्टिंग की वकालत करते हुए यह मानता है कि मूल्यांकन को विद्यार्थी के सामर्थ्य एवं कमज़ोरी का आकलन करने वाला होना चाहिए।

जुलाई 1989 की केब समिति की यह सिफारिश थी कि राज्य शिक्षा बोर्ड को कोटिकरण तथा मापन के क्षेत्र में विद्यार्थियों की विद्वत्त तथा विद्ववेत्तर उपलब्धियों का निरन्तर आन्तरिक मूल्यांकन करने के लिए प्रभावी क़दम उठाने चाहिए। *काउन्सिल ऑफ बोड्र्स ऑफ स्कूल एजुकेशन इन इण्डिया* ने 19वीं वार्षिक बैठक (1990) में यह सिफारिश की कि चरणबद्ध एवं व्यापक, अनवरत आंतरिक मूल्यांकन किया जाना चाहिए, सार्वजनिक परीक्षाओं को समाप्त करने के लिए राज्य बोर्डों को मिलकर काम करना चाहिए, विशेष रूप से 10वीं कक्षा के अंत में ली जाने वाली परीक्षा के संबंध में। पर इसकी शर्त यह है कि अनवरत, व्यापक आन्तरिक मूल्यांकन विश्वसनीय हो, स्तरण (ग्रेडिंग) प्रणाली में सुधार लाया गया हो तथा उच्च शिक्षा संस्थानों में प्रवेश परीक्षाओं की शुरुआत की गई हो। इसकी सिफारिश है कि माध्यमिक शिक्षा स्तर पर चरणों में सेमेस्टर प्रणाली लागू की जाए (नटराजन, 1989, सिंह, 1989)।

भारतीय शैक्षिक परिदृश्य में परीक्षा की उपरोक्त केन्द्रीय उपस्थिति तथा उसके गैर-शैक्षणिक पक्ष के संबंध में समय-समय पर गठित आयोगों एवं समितियों ने भी विचार-विमर्श कर इसे इंगित किया है, उसकी ख़ामियों तथा उसमें किए जाने वाले सुधारों की चर्चा भी की है। इसी क्रम में मुदालियर आयोग ने यह माना कि परीक्षा वह

मृतभार है जिसने शिक्षकों की पहलकदमी पर रोकथाम लगाई है, पाठ्यचर्या को रूढ़िग्रस्त बनाया है, जीवंतता विहीन एवं मशीनीकृत शिक्षण-पद्धति को बढ़ावा दिया है। इसने प्रयोगशीलता के तमाम प्राण को हतोत्साहित किया है। इसके साथ ही इसने शिक्षा की गलत अथवा ग़ैर-ज़रूरी चीज़ों पर जोर डाला है। कमीशन बिना किसी संदेह के यह मानता है कि वर्तमान माध्यमिक पाठ्यचर्या परीक्षा द्वारा अधीनस्थ है। शिक्षक, अभिभावक तथा बच्चों के दैनंदिनी के अनुभव में दिखने वाला तनाव इसका सबसे बड़ा प्रमाण है। अपनी बात को और जमाते हुए दूसरी अभिव्यक्ति में कमीशन यह कहता है कि हम पूरी तरह से इस बात से सहमत हैं कि हमारी शिक्षा व्यवस्था, परीक्षा प्रणाली द्वारा संचालित है। कमीशन अपने अध्ययन के परिणामस्वरूप यह बतलाता है कि परीक्षा द्वारा बौद्धिक उपलब्धि की जाँच भी अपनी वैधता एवं उपयोगिता के लिहाज़ से प्रश्नों के घेरे में रही है। कमीशन इसे दुर्भाग्यपूर्ण मानता है कि अभी भी हमारी शिक्षा व्यवस्था का प्रमुख ज़ोर सिर्फ अकादमिक पर रहा है और ऐसा मुख्य तौर पर हमारी परीक्षा व्यवस्था के प्रभाव के कारण है। परीक्षा शिक्षा की विषय-वस्तु को न केवल निर्धारित करती है बल्कि वह शिक्षण पद्धति को भी निर्धारित करती है। वस्तुतः यह शिक्षा के सम्पूर्ण उपागम को प्रभावित करती है। इसने स्कूल के सम्पूर्ण जीवन पर इस प्रकार क़ब्ज़ा कर लिया है कि वह न केवल विद्यार्थियों बल्कि शिक्षकों के भी सभी प्रयासों को प्रेरित करने वाली ताकत बन गई है।

यह आम राष्ट्रीय अनुभव है कि विद्यार्थी सम्पूर्ण शिक्षा काल में लगभग पूरी तरह से इस बात पर केन्द्रित हो जाता है कि वह इम्तिहान केसे पास करे। जब तक कि कोई विषय परीक्षा में शामिल न हो तब तक विद्यार्थी उसमें रुचि नहीं लेता। स्कूल की कोई भी गतिविधि-प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष-परीक्षा से संबंधित न हो तो वह विद्यार्थियों में कोई उत्साह जगा पाने में असफल हो जाती है और जहाँ तक परीक्षा पद्धति का सवाल है, तो वह उन्हीं में रुचि लेते हैं, जो सरलता से उत्तीर्ण होना सुनिश्चित कर दे। विद्यार्थी उस पद्धति में रुचि नहीं लेते जो शैक्षिक रूप से ज्यादा सारगर्भित तो है, पर जिनका संबंध परीक्षा से नहीं है। वे नोट्स लेने तथा नकल करने में रुचि लेते हैं, बजाए पाठ्यपुस्तक तथा मौलिक काम को पढ़ने के। वे किसी चीज़ को बौद्धिक तौर पर समझने के बजाए उसको रटने की ओर बढ़ते हैं क्योंकि ऐसा करना परीक्षा में पास होने के लिए मददगार होता है, जिस पर उनका भविष्य टिका है। शिक्षकों के लिए भी परीक्षा कई समस्याओं का सरल समाधान है– चारित्रिक प्रशिक्षण, चहुमुखी व्यक्तित्व,

सम्पूर्ण सामाजिक सामंजस्य तथा जीवन में गहरे मूल्यों के प्रति सराहना का भाव विकसित करना– ये सब ऐसे प्रयास हैं, जिन्हें दर्शा पाना असंभव तो नहीं पर मुश्किल ज़रूर है। पर अकादमिक प्रगति तथा बुद्धिलब्धि को दर्शाना ज्यादा आसान है। शिक्षकों की सफलता का आकलन इस बात से किया जाता है कि उसके विद्यार्थी कैसा परीक्षाफल लाए। चूँकि बाह्य परीक्षा में पास होने तथा रोज़गार हासिल करने के बीच गहरा रिश्ता है, इसलिए औसत अभिभावक किसी अन्य चीज़ के बजाए बच्चे के परीक्षा में उत्तीर्ण होने में ही रुचि लेते हैं।

उच्च शिक्षा देने वाले तथा युवा लोगों को रोज़गार देने वाले अधिकारीगण भी अधिकांशत: पूरी तरह से परीक्षा परिणाम से ही निर्देशित होते हैं। महाविद्यालय भी (अधिकांशतया) विद्यार्थियों को अपने यहाँ प्रवेश देने के मामले में पूरी तरह से जन परीक्षा में हासिल किए गए अंकों का ही इस्तेमाल करते हैं। आयोग का मानना है कि पूरी की पूरी परिस्थितियाँ ग़ैर-जरूरी तथा अप्राकृतिक तौर पर परीक्षा पर बल देने के लिए षड्यंत्रित हैं– ख़ासकर बाह्य पर। आयोग यह मानता है कि परीक्षा पाठ्यचर्या का अनुकरण करने की जगह उसे निर्देशित करने लगी है। इसने शिक्षा में किए जा सकने वाले प्रयोग को चोट पहुँचाई है, विषय के साथ उचित बर्ताव को ठेस पहुँचाई है, शिक्षण पद्धति को नुकसान पहुँचाया है। साथ ही साथ थकाऊ, एकरूपी शिक्षण को बढ़ावा दिया है। इसने मौलिकता को बढ़ावा देने के बजाय विद्यार्थियों को रूढ़ तथा संकीर्ण क्षेत्र पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए उकसाया है। इस प्रकार परीक्षा ने विद्यार्थियों को शिक्षा के संबंध में गलत मूल्य विकसित करने में मदद पहुँचाई है।

1964-66 की शिक्षा आयोग की रिपोर्ट 'शिक्षा और राष्ट्रीय विकास' इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि शिक्षा के सभी स्तर ख़ासकर माध्यमिक शिक्षा, परीक्षा प्रणाली के घातक चपेट में है। आयोग परीक्षा एवं मूल्यांकन (बाहरी एवं आंतरिक) की सीमाओं का रेखांकन करते हुए मुदालियर आयोग के इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि परीक्षा केवल बौद्धिक प्रगति का ही मूल्यांकन करती है। मनुष्य के अन्य पक्षों के विकास का मूल्यांकन नहीं करती। लिखित परीक्षा विद्यार्थी के कई महत्वपूर्ण पहलुओं के आकलन में अशक्त है। उसका मानना है कि अगर परीक्षा एवं मूल्यांकन को यथार्थ मूल्य वाला होना है तो उसे अपने आकलन के दायरे में विद्यार्थियों के सम्पूर्ण विकास को लाना होगा। आयोग सुझाता है कि प्रश्नपत्र बनाने वालों की योग्यता को बढ़ाकर, ज्ञानार्जन के अतिरिक्त अन्य उद्देश्याभिमुख प्रश्नपत्र बनाकर, प्रश्नों के स्वरूप

में सुधार लाकर, परीक्षा फलांकन कार्यपद्धति को वैज्ञानिक बनाकर बाह्य परीक्षा में सुधार किया जा सकता है।

वह लिखित परीक्षा के वर्चस्व एवं उसकी वैधता को लेकर चिंतित है, उसका मानना है कि आधुनिक शिक्षण को प्रभावशाली तरीक़े से तभी अपनाया जा सकता है, जब वर्तमान परीक्षा प्रणाली में संबंधित सुधार किए जाएँ। आयोग यह विकल्प सुझाता है कि बाह्य परीक्षा के दायरे में नहीं आ सकने वाले आयामों को शामिल करने के लिए आन्तरिक आकलन, अवलोकन, मौखिक एवं प्रायोगिक परीक्षा को स्थापित करना होगा। परीक्षा परिणाम ऐसा होना चाहिए, जो अंकों में परिवर्तनीय हो पर साथ में विवरणात्मक भी हो और परिणाम संचयी *रिकार्ड* का उपयोग करते हुए सापेक्षिक हो। परिणाम में पास-फेल का ज़िक्र न हो बल्कि उसमें विभिन्न विषयों में विद्यार्थी के निष्पादन का ज़िक्र हो। विद्यार्थी को यह मौका होना चाहिए कि वह एक विषय या एकाधिक में अपना निष्पादन सुधार सके। आयोग परीक्षा और परीक्षा परिणाम में लगने वाले अन्तराल को कम करने के पक्ष में भी है।

आयोग का यह सुझाव है कि हर राज्य अपने स्थानीय हालात एवं वहाँ के विकासात्मक चरण को संदर्भित करते हुए कक्षा 8, 10 एवं 12 के आखिर में अपेक्षित मानक की घोषणा करे और फिर से सबको समाहित करते हुए एक राष्ट्रीय मानक की घोषणा की जानी चाहिए, जिससे नीचे किसी राज्य को नहीं गिरना चाहिए। इसमें ऐसा भी हो सकता है कि कुछ राज्य इससे परे भी चले जाएँ। इसके साथ-साथ यह भी ख्याल रखना चाहिए कि राष्ट्रीय मानक को ऊँचा किया जाए।

नेशनल कमीशन ऑन टीचर्स (चट्टोपाधयाय आयोग, 1983-85) भी परीक्षा पर अत्यधिक ज़ोर एवं उसके लिए जाने के तरीके की, होती आ रही आलोचनाओं पर हमारा ध्यान ले जाता है। उसकी नज़र में परीक्षा अपनी विश्वसनीयता खो बैठी है, फिर चाहे यह स्कूल के स्तर पर ली जाने वाली परीक्षा हो अथवा विश्वविद्यालय स्तर पर। कमीशन यह उद्धृत करता है कि देश में तथा अन्य जगहों पर हुए शोध ने परीक्षा की कुरूपता को उजागर किया है। फिर भी किसी उचित विकल्प के अभाव में रोज़गार एवं उच्च शिक्षा में प्रवेश के संदर्भ में विद्यार्थियों की प्रतिभा जांच की एकमात्र कसौटी परीक्षा ही रहती चली आ रही है। कमीशन इस स्थिति में यह सुझाता है कि परीक्षा की वस्तुनिष्ठता एवं विश्वसनीयता को क़ायम करने के लिए तत्काल कोई व्यावहारिक क़दम उठाया जाना चाहिए।

कमीशन सुझाता है कि विद्यार्थियों से अपेक्षित विभिन्न तरह की दक्षताओं/सक्षमताओं की संख्या को परिभाषित किया जाना चाहिए। फिर इसकी जाँच की जानी चाहिए कि विद्यार्थियों ने इसमें कितनी महारत हासिल की है। इसकी जाँच के लिए वह 'नेशनल जाँच सेवा' की तरह की *एजेन्सी* को गठित किए जाने की सिफारिश करता है। इसका काम होगा मानकीकृत जाँच को विकसित करना तथा उसे लागू करना ताकि मानक की सटीक जाँच की जा सके ताकि विभिन्न कोर्सों में विद्यार्थियों के चयन में संस्थाओं को मदद पहुँचाई जा सके।

कमीशन यह महसूस करता है कि जो पढ़ाता है, वही अधिगम की प्रभावशीलता को जाँचने वाला सबसे अच्छा जज है और यह शिक्षा के सभी स्तरों पर सही है। आन्तरिक मूल्यांकन को महत्व एवं संभावना देने का जो प्रयत्न हुआ है, वह दुर्भाग्य से कई अनुचित कार्यों तथा अधिक अंक देने की वजह से कठिनाइयों में घिर गया। पर इसका समाधान यह नहीं है कि आन्तरिक मूल्यांकन के विचार को ही त्याग दिया जाए। बल्कि अच्छा यह हो कि प्रस्तावित 'राष्ट्रीय टेस्टिंग सेवा' द्वारा विकसित किए गए टेस्ट का जब नमूने के तौर पर प्रयोग हो जाए, तब बाह्य एवं आन्तरिक मूल्यांकन के बीच संगति बिठाई जाए।

उच्च शिक्षा के जीर्णोद्धार तथा पुनर्नवीकरण के लिए प्रो. यशपाल की अध्यक्षता में सन् 2009 में गठित समिति *(द कमेटी टू एड्वाइज ऑन रिनोवेशन एण्ड रीजूविनेशन ऑफ हायर एजूकेशन)* की टिप्पणी है कि आज की हमारी पाठ्यचर्या एवं पाठ्यक्रम वस्तुतः जड़ जमा चुकी परीक्षा पद्धति का ही प्रतिबिंबन है। पुरातन परीक्षा प्रणाली का उपयोग ऊपरी तौर पर तो विद्यार्थियों की योग्यताओं के प्रमाणपत्रीकरण के लिए किया जाता है पर दुर्भाग्य है कि यह न तो शुद्ध सैद्धान्तिक ज्ञान और ना ही वास्तविक दुनिया की प्रायोगिक स्थितियों में विद्यार्थियों के सफल होने की काबिलियत की कोई जाँच करता है।

समिति यह पाती है कि उन संस्थाओं में भी जहाँ बेहतर सुविधाएँ हैं और लचीली हैं वहाँ भी परीक्षा पारंपरिक ही बनी हुई है और वह विद्यार्थियों की विभिन्न योग्यताओं को पहचानने में कारगर साबित नहीं हुई है। स्कूलों की तरह ही विश्वविद्यालय स्तर पर ली जाने वाली परीक्षा ने भी स्मृति आधारित प्रश्नों के दायरों को ही बड़ा किया है। कभी-कभी रटन्त आधारित 'अनुप्रयोग' वाले प्रश्न भी पूछे जाते हैं, जो यह आभास दिलाते हैं, जैसे कि वह वास्तविक दुनिया की समस्या का

समाधान हो। ऐसा करते हुए वह वास्तविक दुनिया को जाँचने-परखने तथा समझने के संबंध में विद्यार्थियों की अयोग्यता को स्थापित कर रहे होते हैं। नतीजा यह होता है कि अपनी योग्यताओं को आज़माने के लिए विद्यार्थी जब बाहैसियत नागरिक एवं कामगार वास्तविक दुनिया में उतरता है तब लोगों एवं मुद्दों के साथ उसकी संलग्नता नहीं के बराबर होती है।

राममूर्ति समिति (1990) इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि लम्बे समय से परीक्षा वास्तव में विद्यार्थियों की याद्दाश्त मापने का साधन और अध्यापन परीक्षा की तैयारी करवाना रह गया है। इसमें सुधार के लिए किए गए प्रयत्नों के बावजूद आज स्थिति एक़दम उल्टी है। परीक्षा पद्धति शिक्षा के स्वरूप एवं गुणवत्ता का निर्धारण कर रही है। परीक्षा नामक संस्था विद्यार्थी को समाज में काम करने और जीवन का सामना करने के लिए सज्जित करने की जगह एक कन्वेयरबेल्ट का काम करती है। राममूर्ति समिति परीक्षा सुधार के सुझाव देते हुए यह ज़ोर देती है कि परीक्षा को विकेन्द्रित दर्शन पर चलाया जाना चाहिए। अनवरत, आंतरिक मूल्यांकन होना चाहिए व मूल्यांकन को इस दर्शन को लेकर आगे बढ़ना चाहिए कि ''जो पढ़ाते हैं वही पाठ्यक्रम निर्धारित करें और वही मूल्यांकन करें।'' विद्यार्थियों को प्रमात्रक (मॉड्यूल) चुनने की स्वतंत्रता और सुविधा मिलनी चाहिए बजाय इसके कि वे सम्पूर्ण पाठ्यक्रम के पैकेज लेने को बाध्य हों। विद्यार्थियों को इकाई (क्रेडिट) संचयन का प्रावधान मिलना चाहिए। एक संस्था से दूसरी संस्था में ग्रेड अन्तरण की सुविधा होनी चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में परीक्षा का विमर्श

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986, 1992 एवं उसकी तत्संबंधी कार्ययोजना में वर्तमान परीक्षा की समीक्षा एवं उसके विकल्प पर विस्तार से विचार किया गया है। नीति बाह्य परीक्षा के वर्चस्व को कम करके संस्थान के स्तर पर किए जाने वाले मूल्यांकन को मुख्य धारा में लाने की बात करती है।

नीति यह स्पष्ट करती है कि परीक्षा को शिक्षा में गुणात्मक सुधार यानी सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में सुधार के ज़रिए अपनी वैधता एवं विश्वसनीयता क़ायम करनी चाहिए। संयोग की अत्यधिक व्याप्ति, व्यक्तिनिष्ठता, रटन्त को ख़त्म करके, सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन के ज़रिए बौद्धिक एवं अबौद्धिक/विद्वता एवं ग़ैरविद्वता के क्षेत्र तथा समझ, अनुप्रयोग, विश्लेषण, संश्लेषण तथा निर्णय की उच्च योग्यताओं को मूल्यांकन में

समाहित करके यह काम किया जा सकता है। इस संबंध में ऐसी योग्यताओं तथा प्रवीणताओं की शिनाख्त किया जाना उपयोगी होगा जिसका मूल्यांकन संस्थागत मूल्यांकन के मार्फत ही संभव है।

परीक्षा में गुणात्मक बदलाव के लिए नीति यह मानती है कि इसका विकेन्द्रीकरण किया जाना चाहिए। राज्य स्तरीय स्कूल बोर्ड के उपकेन्द्र की स्थापना करनी चाहिए जिसका काम होगा– प्रश्नपत्र तैयार करना, इन्हें छपवाना, जनता में विश्वास पैदा करने के लिए और शिक्षा बोर्डों के अध्यक्षों/सचिवों तथा नियंत्रकों की नियुक्ति के लिए कार्यविधि का विकास किया जाना चाहिए। परीक्षक की ईमानदारी, विद्यार्थियों को अपनी उत्तर-पुस्तिकाओं और उसके मूल्यांकन की जाँच, अन्य उत्तर-पुस्तिकाओं से मिलान का हक़, खुली पुस्तक परीक्षा, अनुवर्ती परीक्षाओं के ज़रिए अपने ग्रेड में सुधार का मौका, पाठ्यक्रमों के मॉडयूल नमूने के अनुरूप परीक्षाओं को खण्डों में पास करने की व्यवस्था, ऐसी स्थिति की ओर बढ़ने का प्रयास जिसमें पढ़ाने वाला ही जाँचकर्ता हो, उपरोक्त पहलकदमियों के ज़रिए परीक्षा की वैधता एवं विश्वसनीयता क़ायम की जा सकती है। इस संबंध में सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन की ऐसी लचीली स्कीम अपनायी जानी चाहिए, जो विभिन्न प्रांतों की और विभिन्न स्कूलों की परिस्थिति विशेष के लिए सटीक बैठे। परीक्षा विद्यार्थी के अपने उपलब्धि स्तर को सुधारने वाली हो तथा दिए गए समय में विद्यार्थी के निष्पादन की गुणवत्ता के प्रमाणन से भिन्न हो। विद्यार्थी को क्रेडिट के संचयन का मौका होना चाहिए। इस व्यवस्था से विद्यार्थी को अपनी ही गति से आगे बढ़ने में मदद मिलेगी। नीति परीक्षा सुधार के लिए आगे यह सुझाती है कि प्रश्नपत्र तैयार करने वाले व्यक्तियों के लिए सघन प्रशिक्षण कार्यक्रम, प्रश्न-बैंक का विकास, विषयनिष्ठता सुनिश्चित करने के लिए विस्तृत अंकन योजना की सुविधाएँ दी जानी चाहिए। परीक्षा नियोजन में सुधार, चरणबद्ध रूप से माध्यमिक स्तर पर सेमेस्टर पद्धति तथा अंक की जगह ग्रेडिंग पद्धति को लागू करके परीक्षा में सुधार लाया जा सकता है।

नीति का मानना है कि पेशेवर तथा तकनीकी कोर्स में चयन के लिए परीक्षा का आयोजन, अखिल भारतीय स्तर पर होना चाहिए। इसके साथ ही राष्ट्रीय परीक्षा सुधार की रूपरेखा का विकास एवं राष्ट्रीय मूल्यांकन संगठन की स्थापना की जानी चाहिए। स्वैच्छिक आधार पर राष्ट्रव्यापी परीक्षाएँ लेने के लिए गुणवत्ता-नियंत्रक-तंत्र के रूप में एक राष्ट्रीय परीक्षण सेवा की स्थापना की जानी चाहिए ताकि निष्पादन की

तुलनीयता तथा स्वतंत्र परीक्षाएँ लेने के लिए प्रतिमान तैयार किए जा सकें। नीति यह स्पष्ट करती है कि 10वीं एवं 12वीं के परीक्षा परिणाम पत्र से अपेक्षा न की जाए कि वह उच्च शिक्षा के संस्थानों में प्रवेश दिलाने का काम करे। नीति यह स्पष्ट करती है कि उच्च शिक्षा की संस्थाओं में प्रवेश के लिए चयन परीक्षा का काम यू.जी.सी. तथा राज्य सरकारें करें।

निष्कर्ष

विश्लेषण इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि शैक्षिक दस्तावेज़ परीक्षा की अकादमिक एवं सामाजिक स्वीकृति, वैधता एवं विश्वसनीयता की स्थिति की पड़ताल करते हुए उसको अपेक्षाकृत और अधिक स्वीकार्य, वैध एवं विश्वसनीय बनाने का विमर्श पेश करते हैं। शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यचर्या एवं परीक्षा के बीच असन्तुलित अन्तर्सम्बन्ध को उजागर करते हुए उसे बेहतर बनाने का उपाय भी सुझाते हैं। परीक्षा के सीमित दायरे का रेखांकन भी करते हैं और उस दायरे के विस्तार की सलाह भी देते हैं। मसलन परीक्षा के संज्ञानात्मक क्षेत्र तक सीमित होने एवं संवेगात्मक क्षेत्र की उपेक्षा करने को शैक्षिक दस्तावेज़ चिंहित करते हैं। शैक्षिक दस्तावेज़ परीक्षा जनित तनाव एवं प्रबंधन की कमियों की वजह से होने वाले कदाचारों को भी सम्बोधित करते हैं। इन दस्तावेज़ों में वार्षिक बनाम सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन, वार्षिक बनाम सत्रगत परीक्षा, स्मृति आधारित बनाम चिन्तनशीलता जैसे मुद्दों पर विस्तार से चर्चा दिखाई देती है। इन दस्तावेज़ों का कालावधि-विस्तार लगभग डेढ़ सौ सालों का रहा है। इन दस्तावेज़ों में परीक्षा को लेकर जो चिंताएँ, सरोकार एवं सुधार के सुझाव दिए गए हैं, उनमें कई ऐसे हैं जिन पर दस्तावेज़ों की औसत सहमति देखी जा सकती है। इन शैक्षिक दस्तावेज़ों की पड़ताल से निकले ऐसे ही आम सहमति के कुछ मुद्दों को नीचे दिया जा रहा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शैक्षिक दस्तावेज़ों में परीक्षा के विभिन्न पक्षों– कमज़ोरियों, ख़ामियों तथा प्रबलता के क्षेत्र पर बहुत विस्तृत गहन विमर्श उपलब्ध है। परन्तु ऊँच-नीच के पदानुक्रम में बँटे हुए विद्यार्थियों के लिए परीक्षा, सफलता के समान अवसर सृजित करने के लिहाज़ से कैसा बर्ताव करती आई है इसकी चिन्ता, चिन्तन एवं विमर्श देखने को नहीं मिलता।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि परीक्षा में अव्वल आने वाले विद्यार्थियों के संबंध में लिखित समाचार पत्र जितनी रुचि एवं जन-संचेतना दिखाते हैं उसकी बजाए बहुत ही कम रुचि फेल होने वाले विद्यार्थियों और परिणाम में गिरावट वाले विद्यार्थियों के

प्रति दिखाते हैं। इसके अतिरिक्त जिन मदों से संबंधित ख़बरें आई हैं वो हैं 'परीक्षा प्रबंधन', 'पुरस्कार', 'दण्ड', 'परीक्षा प्रणाली की ख़ामियाँ', 'परीक्षा और अनहोनी', 'परीक्षा के विकल्प सुधार, आलोचना' आदि।

शिक्षा पर गठित आयोगों एवं समितियों, बैठकों, सम्मेलनों में परीक्षा पर जरूर कुछ चर्चा मिलती है। शिक्षा पर परीक्षा का अनाधिकृत कब्जा, उसका बढ़ता हुआ गैर-शैक्षिक चरित्र एवं ऊँची होती हैसियत का रेखांकन में मिलता है। पर परीक्षा के सामाजिक चरित्र पर विमर्श नहीं मिलता। वह इन सवालों पर खामोश रहती है कि क्या परीक्षा, साधन सम्पन्न अभिजात्य, शहरी, विद्यार्थियों एवं समाज के ग्रामीण, अल्पसंख्यक, दलित पृष्ठभूमि के विद्यार्थियों के लिए समान बर्ताव वाली है। चेतना के इस अभाव को कुमार (2005) इस प्रकार उभारते हैं कि आज देश के पास यह मोटा-सा आंकड़ा उपलब्ध नहीं है कि बोर्ड परीक्षा (10वीं एवं 12वीं) में ग्रामीण स्कूलों का पास प्रतिशत शहरी इलाकों के मुकाबले कितना कम रहा।

संदर्भ

कुमार, कृ. (2005, मार्च 20). बच्चों का बलिदान, *जनसत्ता* (रविवासरीय), पृ. 2।

केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (सी.बी.एस.ई.). (2010)(ख). *सतत एवं व्यापक मूल्यांकन, शिक्षक संदर्भिका कक्षा-9 से 10.* दिल्ली : केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (सी.बी. एस.ई.)।

नटराजन, वी. (1989). इग्जामिनेशन रिफॉर्म एट द स्कूल स्टेज (1947-80). संकलित एल. एस. सरस्वती, वी. नटराजन (संपा.) *स्टडीज इन एजुकेशनल रिफॉर्म इन इण्डिया* (वाल्यूम-4 : मीडियम ऑफ इन्स्ट्रक्शन एण्ड द एक्जामिनेशन रिफॉर्म एट डिफरेन्ट लेबल्स) (पृ. 96-244). बॉम्बे : हिमालया पब्लिशिंग हाऊस।

भारत सरकार. (1990). *प्रबुद्ध एवम् मानवीय समाज की ओर.* नई दिल्ली : मानव संसाधन विकास मंत्रालय (एम.एच.आर.डी.)।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय (एम.एच.आर.डी.) (2009). *रिपोर्ट ऑफ 'द कमिटी टू एडवाइस ऑन रेनोवेशन एण्ड रीजूविनेशन ऑफ हायर एजुकेशन.* दिल्ली : भारत सरकार।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय (एम.एच.आर.डी.) (1993). *शिक्षा बिना बोझ के.* दिल्ली : भारत सरकार।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय (एम.एच.आर.डी.) (1992). *प्रोग्राम ऑफ एक्शन.* दिल्ली : भारत सरकार।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय (एम.एच.आर.डी.) (1986). *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986.* दिल्ली : भारत सरकार।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय (एम.एच.आर.डी.) (1986). द *रिपोर्ट ऑफ नेशनल कमीशन ऑन टीचर्स : पार्ट-I एंड पार्ट-II.* दिल्ली : भारत सरकार।

मॉनिटरिंग एवं सांख्यिकी विभाग (1997). *रिजल्ट्स ऑफ हाईस्कूलस् एण्ड हायर सेकेण्डरी एक्जामिनेशन्स (1989-1990).* दिल्ली : योजना।

शिक्षा मंत्रालय (1968). *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968.* दिल्ली : भारत सरकार।

शिक्षा मंत्रालय (1966). *शिक्षा आयोग की रिपोर्ट : शिक्षा और राष्ट्रीय विकास.* दिल्ली : भारत सरकार।

शिक्षा मंत्रालय (1962). *विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948-49).* दिल्ली : भारत सरकार।

शिक्षा मंत्रालय (1952). *रिपोर्ट ऑफ सेकेण्डरी एजुकेशन कमीशन.* दिल्ली : भारत सरकार।

श्रीवास्तव, एच.एस. एवं अन्य (1978). *रिफॉर्मिंग एक्जामिनेशन्स सम इमर्जिंग कन्सेप्ट्स.* नई दिल्ली : नेशनल कौंसिल ऑफ एजुकेशन रिसर्च एण्ड ट्रैनिंग।

सिंह, प्री. (1989). *एक्जामिनेशन रिफॉर्म इन रेट्रॉसपेक्ट : हैंडबुक ऑफ पीपुल्स इवैल्यूशन.* नई दिल्ली : ए लायड पावेल।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 25, अंक 3, दिसंबर 2018

स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में सहसंबंध

लाजवंती* एवं **सोहिल कुमार बंसल****

सारांश

प्रत्येक विद्यार्थी की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर विशिष्ट होता है जो उसे स्वयं का आंकलन करने में सहायक होता है, जिसके फलस्वरूप वह भविष्य के लिए विभिन्न योजनाओं व उद्देश्यों को स्वरूप प्रदान करता है। शिक्षा ही वह साधन है जिसके माध्यम से हम विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि व शैक्षिक आकांक्षा स्तर को ऊँचा उठा सकते है। शिक्षा व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जिससे विद्यार्थी अपनी योग्यताओं व कौशलों के अनुरूप आकांक्षाओं का निर्धारण कर सके। वर्तमान अध्ययन का उद्देश्य स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर का अध्ययन करना, छात्र-छात्राओं की इन चरों पर तुलना तथा दोनों चरों के मध्य सहसंबंध का अध्ययन करना था। अध्ययन के लिए सौद्देश्य विधि से आगरा शहर के डी.ई.आई. विश्वविद्यालय की स्नातक स्तर की तीन संकायों का चयन कर प्रत्येक संकाय से सरल यादृच्छिक विधि द्वारा 50-50 विद्यार्थियों, जिनमें 25 छात्र व 25 छात्रायें शामिल थीं, का चयन किया गया। इस प्रकार कुल 150 विद्यार्थियों का न्यादर्श के रुप में चयन किया गया। उपकरण के रुप में शैक्षिक उपलब्धि के मापन हेतु उनके स्नातक स्तर के तृतीय सेमेस्टर के प्रतिशत प्राप्तांकों को लिया गया तथा शैक्षिक आकांक्षा स्तर के मापन हेतु डा. वी.पी. शर्मा एवं डा. अनुराधा गुप्ता द्वारा निर्मित शैक्षिक आकांक्षा स्तर प्रमापीकृत परीक्षण का प्रयोग किया गया। सांख्यिकीय प्रयोग हेतु मध्यमान, मानक विचलन, क्रान्तिक अनुपात एवं प्रोडक्ट मोमेन्ट

* प्रोफेसर, दयाल बाग शिक्षा संस्थान, मानित विश्वविद्यालय, आगरा
** व्याख्याता, रामसिंह महाविद्यालय, डॉ. भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, टूण्डला

सहसंबंध गुणांक का प्रयोग किया गया। निष्कर्ष के तौर पर स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर पाया गया। छात्रों की तुलना में छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि अधिक पायी गयी। स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं के शैक्षिक आकांक्षा स्तर में अन्तर नहीं पाया गया। स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में मध्यम धनात्मक सहसंबंध पाया गया।

प्रस्तावना

प्रत्येक समाज की कुछ मूल्य व मान्यतायें होती है जिन्हें व्यक्ति सुरक्षित रखना चाहता है और अपनी आगामी पीढ़ी को हस्तान्तरित करना चाहता है। शिक्षा ही वह साधन है जिसका प्रयोग करके समाज अपनी संस्कृति व सभ्यता का संरक्षण व हस्तांतरण करता है। शिक्षा मनुष्य को सुसंस्कृत बनाती है तथा संवेदनशीलता व दृष्टि को प्रखर व प्रशस्त करती है। शिक्षा हमारे मौलिक व आध्यात्मिक विकास का एक आवश्यक साधन है। यही कारण है कि मानव इतिहास के आदिकाल से ही शिक्षा अपनी पहुँच व आवरण को बनाती रही है। शिक्षा ही वह सीढ़ी है जिस पर चढ़कर व्यक्ति अपने आर्थिक, सामाजिक आदि स्तरों को ऊँचा बना सकता है। समाज की शक्ति का आधार भी शिक्षा है। शिक्षा मानव सिद्धान्तों की प्राप्ति का एक साधन भी है। समाज में रहकर व्यक्ति जो कुछ सीखता है उसी के कारण वह स्वयं को पाश्विक प्रवृत्तियों से ऊँचा उठाता है। शिक्षा स्कूल व कॉलेज की चारदिवारी तक ही सीमित न होकर जीवन-पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है और यह विद्यार्थी जीवन के प्रत्येक अनुभव से उसके ज्ञान भण्डार में वृद्धि करती है।

कोठारी आयोग (1964-66) ''भारत के भाग्य का निर्माण उसकी कक्षाओं में हो रहा है। हमारे स्कूल व कॉलेज से निकलने वाले विद्यार्थियों की योग्यता कार्य की सफलता पर निर्भर करती है। शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य हमारे रहन-सहन के स्तर को ऊँचा उठाना है।'' शिक्षा एक सतत प्रक्रिया है इस प्रक्रिया का संचालन स्कूल व कॉलेज दोनों में किया जाता है चूँकि कॉलेज में विभिन्न धर्म, जाति, वर्ग तथा समुदाय के विद्यार्थी एक साथ शिक्षा ग्रहण कर अपना विकास करते है। इस प्रकार कॉलेज वे संस्थाए है जिन्हें सभ्य मनुष्य के द्वारा इस उद्देश्य से स्थापित किया जाता है कि समाज में सुव्यवस्थित तथा योग्य सदस्यता के लिए विद्यार्थियों की तैयारी में सहायता मिले। कॉलेज में भिन्न-भिन्न धर्म, लिंग एवं सामाजिक वर्ग के विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करते है। यूँ तो कॉलेज में पढ़ने वाले सभी विद्यार्थी समान दिखाई देते है किन्तु सूक्ष्म रूप से प्रत्येक विद्यार्थी एक दूसरे

से अवयव व अनुभूति दोनों दृष्टि से सर्वथा भिन्न है और उनकी शैक्षिक उपलब्धि व शैक्षिक आकांक्षा स्तर भी भिन्न होते है जो उनमें मौलिकता एवं नवीनता की भावना को जन्म देते हैं। प्रत्येक विद्यार्थी की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर विशिष्ट होता है जो उसे स्वयं का आंकलन करने में सहायक होता है जिसके फलस्वरूप वह भविष्य के लिए विभिन्न योजनाओं व उद्देश्यों को स्वरूप प्रदान करता है। प्रारम्भ में वह कभी-कभी काल्पनिक स्तर के होते है लेकिन मानसिक विकास के साथ-साथ वह इनमें परिवर्तन करता है और धीरे-धीरे वास्तविकता के धरातल पर अपनी योजनाओं व उद्देश्यों को निरूपित करता है। उद्देश्यों का निर्धारण करने के बाद वह अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आकांक्षा रखता है और उन्हें प्राप्त करने के लिए कार्य करता है। प्रत्येक विद्यार्थी की उद्देश्य प्राप्ति की तीव्रता अलग-अलग होती है तथा विद्यार्थी को अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए शैक्षिक उपलब्धि व शैक्षिक आकांक्षा स्तर आधार प्रदान करते है चूंकि शैक्षिक उपलब्धि व शैक्षिक आकांक्षा स्तर विद्यार्थी केन्द्रित पक्ष होता है इसलिए विद्यार्थी अपनी शैक्षिक उपलब्धि व शैक्षिक आकांक्षा स्तरों को अपनी सामर्थ्य के अनुसार तय करता है। कभी-कभी वह इतने ऊँचे आकांक्षा स्तर निर्धारित कर लेता है कि उन्हें प्राप्त करने में असफल भी हो सकता है। इस प्रकार शिक्षा ही वह साधन है जिसके माध्यम से हम विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि व शैक्षिक आकांक्षा स्तर को ऊँचा उठा सकते है इस तरह से शिक्षा विद्यार्थी का सन्तुलित तथा सर्वांगीण विकास करती है। विद्यार्थी की आन्तरिक शक्तियों का विकास करती है व उन्हें भविष्य के लिए तैयार करती है तथा उन्हें आत्म निर्भर बनाती है।

समस्या का प्रादुर्भाव एवं औचित्य

किसी भी विद्यार्थी के जीवन में सफलता का महत्वपूर्ण स्थान होता है। विद्यार्थी अपनी शिक्षा किसी न किसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर ही प्राप्त करता है। कोई भी विद्यार्थी अपने द्वारा मिलने वाली सफलता व असफलता को किस दृष्टि से स्वीकार करता है यह सब उसके द्वारा निर्धारित शैक्षिक उपलब्धि व शैक्षिक आकांक्षा स्तर पर निर्भर करता है। एक ही कॉलेज में पढ़ने वाले समान आयु वर्ग के बालक-बालिकाओं की शैक्षिक उपलब्धि व शैक्षिक आकांक्षा स्तर में पर्याप्त भिन्नता पाई जाती है। विद्यार्थी किसी भी लक्ष्य के लिए किए गये प्रथम प्रयास में ही अपनी शैक्षिक उपलब्धि व शैक्षिक आकांक्षा स्तर का निर्धारण कर लेता है। उसके आधार पर वह अपनी शैक्षिक उपलब्धि व शैक्षिक आकांक्षा स्तर में परिवर्तन लाता है। शैक्षिक उपलब्धि व शैक्षिक आकांक्षा स्तर विद्यार्थी के जीवन के निर्माण को प्रभावित करते है। विद्यार्थी अपनी शैक्षिक उपलब्धि व शैक्षिक

आकांक्षा स्तर को अपनी सामाजिक आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखकर निर्धारित करता है। विद्यार्थी की आकांक्षाओं में माता-पिता की आकांक्षाए भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। प्राय: उच्च सामाजिक, आर्थिक परिवारों के विद्यार्थी अवास्तविक उच्च स्तरीय आकांक्षाओं का निर्माण करते है। इसके विपरीत निम्न अथवा औसत सामाजिक स्तर के विद्यार्थी भी ऊँची आकांक्षा सोचकर ऊँचा आकांक्षा स्तर निर्धारित करते है। इसकी झलक कॉलेज में देखी जा सकती है। कॉलेज में पढ़ने वाले विद्यार्थियों का सामाजिक, आर्थिक स्तर भिन्न-भिन्न होता है। विद्यार्थी अपने सामाजिक-आर्थिक स्तर से बहुत ऊँचा आकांक्षा स्तर बना लेते है तथा कक्षा में उसके अनुसार ही उपलब्धियाँ प्राप्त करना चाहते है लेकिन उसके अनुरूप योग्यताओं के अभाव में जब वह असफलता प्राप्त करते है तो उससे उनका समायोजन प्रभावित होता है। अत: शिक्षा व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जिससे विद्यार्थी अपनी योग्यताओं व कौशलों के अनुरूप आकांक्षाओं का निर्धारण कर सके।

स्नातक स्तर वह स्तर होता है जिसके अंत तक विद्यार्थी अपनी शैक्षिक उपलब्धि व शैक्षिक आकांक्षाओं को निर्धारित करते है तथा उसी को ध्यान में रखकर वह शिक्षा प्राप्त करना चाहते है तथा विषय का चयन करते हैं। अत: इस स्तर तक उसे अपनी योग्यताओं का ज्ञान होना अति आवश्यक है। शिक्षा का प्रमुख कार्य विद्यार्थी को सही दिशा में अग्रसर करना भी है जबकि कॉलेज में सही निर्देशन के अभाव में विद्यार्थी अपनी स्थिति की सीमा से ऊपर आकांक्षा स्तर बना लेता है जिससे अच्छी प्रतिष्ठा विकसित होने का अवसर प्राप्त नहीं होता। अत: स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि व शैक्षिक आकांक्षा स्तर में सहसंबंध के अध्ययन को शोधकर्ता ने अपने लघु शोध विषय में चुना है।

अत: प्रस्तुत शोध अध्ययन में निम्न शोध प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने का प्रयास किया गया-

1. स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि किस प्रकार से भिन्न है?
2. स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं की शैक्षिक आकांक्षा स्तर किस प्रकार से भिन्न है?
3. स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर के सहसंबंध में क्या भिन्नता है?

उपरोक्त शोध प्रश्नों के समाधान के परिप्रेक्ष्य में शोधार्थी द्वारा समस्या का चयन शोध के निमित्त किया गया।

समस्या कथन

स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में सहसंबंध का अध्ययन।

समस्या कथन में प्रयुक्त शब्दों का परिभाषीकरण

स्नातक स्तर

स्नातक स्तर से अभिप्राय विश्वविद्यालयी शिक्षा के स्तर से है जिसमें विद्यार्थी इण्टरमीडिएट (10+2) कक्षाओं के निर्धारित पाठ्यक्रम को पूर्ण करके कम से कम तीन वर्षीय डिग्री कोर्स में अध्ययन करता है।

कार्यात्मक परिभाषा

वर्तमान अध्ययन में स्नातक स्तर से अभिप्राय उन विद्यार्थियों से है जो दयालबाग शिक्षण संस्थान (डीम्ड विश्विद्यालय) की वाणिज्य संकाय, विज्ञान संकाय एवं सामाजिक विज्ञान संकाय के तृतीय सेमेस्टर में अध्ययनरत् है।

शैक्षिक उपलब्धि

ट्रायलर (1968) के अनुसार- ''शैक्षिक उपलब्धि वार्षिक परीक्षा में विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त अंकों का समग्र योग होता है।''

कार्यात्मक परिभाषा

वर्तमान अध्ययन में शैक्षिक उपलब्धि से अभिप्राय डी.ई.आई. विश्वविद्यालय में सम्पूर्ण सत्र के दौरान चलने वाली सतत मूल्यांकन प्रक्रिया में स्नातक स्तर के तृतीय सेमेस्टर के विद्यार्थियों के सार्वजनिक परीक्षा में प्राप्त अंको के कुल प्रतिशत से है।

शैक्षिक आकांक्षा स्तर

जेम्स ड्रेवर (1956) के अनुसार- ''शैक्षिक आकांक्षा स्तर का अर्थ है एक व्यक्ति की अपने स्वानुभावों के द्वारा सफलता तथा असफलता की प्राप्ति।''

कार्यात्मक परिभाषा

वर्तमान अध्ययन में शैक्षिक आकांक्षा स्तर से अभिप्राय व्यक्ति द्वारा अपने आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक तथा पारिवारिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए स्वयं के लिये निर्धारित लक्ष्यों जिन तक वह पहुँचना व उन्हें प्राप्त करना चाहता है, से है। यह लक्ष्य पद, आर्थिक स्थिति, शिक्षा आदि के सन्दर्भ में हो सकते हैं।

अध्ययन के उद्देश्य

1. स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन करना।
2. स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

3. स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं की शैक्षिक आकांक्षा स्तर का अध्ययन करना।
4. स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं की शैक्षिक आकांक्षा स्तर का तुलनात्मक अध्ययन करना।
5. स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि व शैक्षिक आकांक्षा स्तर में सहसंबंध का अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पनाएँ

1. स्नातक स्तर के छात्र एवं छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता।
2. स्नातक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के शैक्षिक आकांक्षा स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता।
3. स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में कोई सार्थक सहसंबंध नहीं पाया जाता।

अध्ययन का परिसीमांकन

1. प्रस्तुत शोध कार्य को आगरा शहर के डी.ई.आई. विश्वविद्यालय तक ही सीमित रखा गया।
2. प्रस्तुत शोध कार्य में स्नातक स्तर के तृतीय सेमेस्टर के विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया।
3. प्रस्तुत शोध कार्य में वाणिज्य संकाय, विज्ञान संकाय एवं सामाजिक विज्ञान संकाय के विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया।
4. प्रस्तुत शोध कार्य में न्यादर्श स्वरूप 150 विद्यार्थियों का चयन किया गया।

अध्ययन के चर

1. **स्वतंत्र चर**- स्नातक स्तर के विद्यार्थी।
2. **आश्रित चर**- शैक्षिक उपलब्धि तथा शैक्षिक आकांक्षा स्तर।

संस्था का चयन

प्रस्तुत शोध कार्य के सन्दर्भ में शोधार्थी द्वारा आगरा शहर में स्थित डी.ई.आई. विश्वविद्यालय में से **सौद्देश्य विधि** द्वारा स्नातक स्तर के तीन संकायों का चयन किया गया। इन संस्थाओं के चयन के निम्न कारण है:

1. यह स्नातक स्तर की संकाय है।
2. इन संकायों में छात्र एवं छात्रायें दोनों साथ-साथ पढ़ते हैं।

3. इन संकायों में छात्र–छात्राओं की संख्या हमारे उद्देश्य के अनुरूप समान अनुपात में है।

न्यादर्श का चयन

प्रस्तुत शोध अध्ययन के परिप्रेक्ष्य में शोधार्थी द्वारा न्यादर्श में आगरा शहर के डी.ई.आई. विश्वविद्यालय के तीन संकाय वाणिज्य संकाय, विज्ञान संकाय तथा सामाजिक विज्ञान संकाय के विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया। प्रत्येक संकाय में से **सरल यादृच्छिक विधि** द्वारा 50–50 विद्यार्थियों का चयन किया गया जिसमें 25 छात्र व 25 छात्रायें शामिल थे। इस प्रकार कुल 75 छात्र व 75 छात्राओं का चयन किया गया। अत: न्यादर्श के रूप में कुल 150 विद्यार्थियों का चयन किया गया। जिन्हें चित्र संख्या 1 में दर्शाया गया है।

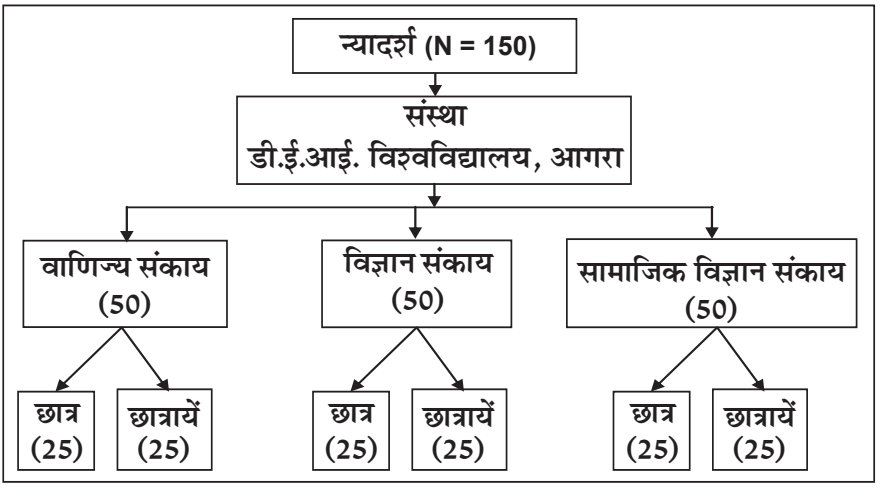

चित्र 1 : न्यादर्श चयन प्रक्रिया

अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण

प्रस्तुत शोध कार्य में निम्न उपकरणों का प्रयोग किया गया–

1. विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के अध्ययन हेतु स्नातक स्तर के तृतीय सेमेस्टर के सार्वजनिक परीक्षा में प्राप्त अंकों के कुल प्रतिशत को आधार माना गया ।
2. शैक्षिक आकांक्षा स्तर के अध्ययन हेतु डा. वी.पी. शर्मा एवं डा. अनुराधा गुप्ता द्वारा निर्मित शैक्षिक आकांक्षा स्तर प्रमापीकृत उपकरण का प्रयोग किया गया।

अध्ययन की विधि

प्रस्तुत शोध में शोधार्थी द्वारा निर्धारित लक्ष्य की ओर अग्रसर होने के लिये तथा शोध की प्रकृति को देखते हुये **'वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि'** का प्रयोग किया गया।

परिणाम एवं व्याख्या

स्नातक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन

प्रस्तुत उद्देश्य की पूर्ति हेतु शोधकर्त्ता द्वारा डी.ई.आई. विश्वविद्यालय के तीन संकायो में से 75 छात्रों का चयन कर उनकी शैक्षिक उपलब्धि के मापन हेतु उनके स्नातक स्तर के तृतीय सेमेस्टर के प्रतिशत प्राप्तांकों को लिया गया जिसके परिणाम को तालिका 1.1 में दर्शाया गया है।

तालिका–1.1

स्नातक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि का विवरण

शैक्षिक उपलब्धि प्रतिशत	श्रेणी	कुल छात्र (75)	
		आवृत्ति	प्रतिशत
90.99	अति उच्च	0	0%
80.89	उच्च	18	24%
70.79	औसत	30	69%
60.69		22	
50.59	निम्न	5	7%
40.49	अति निम्न	0	0%

उपरोक्त तालिका 1.1 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि स्नातक स्तर के 75 छात्रों के तृतीय सेमेस्टर के प्रतिशत प्राप्तांको के आधार पर उनकी शैक्षिक उपलब्धि से संबंधित प्रदत्तों को एकत्रित कर उन्हें पाँच श्रेणियों में इस प्रकार बाँटा गया है। 90.99 के मध्य प्रतिशत प्राप्त करने वाले छात्रों को अति उच्च श्रेणी में रखा गया है। 80.89 के मध्य प्रतिशत प्राप्त करने वाले छात्रों को उच्च श्रेणी में रखा गया है। 60.79 के मध्य प्रतिशत प्राप्त करने करने वाले छात्रों को औसत श्रेणी में रखा गया है। 50.59 के मध्य प्रतिशत प्राप्त करने वाले छात्रों को निम्न श्रेणी में रखा गया है तथा 40.49 के मध्य प्रतिशत प्राप्त करने वाले छात्रों को अति निम्न श्रेणी में रखा गया है। इन आवृत्ति वितरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर पाये जाने का कारण उनकी आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक स्थिति, कक्षा में उपस्थिति एवं उनकी बुद्धिलब्धि हो सकते हैं।

स्नातक स्तर के छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन

प्रस्तुत उद्देश्य की पूर्ति हेतु शोधकर्त्ता द्वारा डी.ई.आई. विश्वविद्यालय के तीन संकायों में से 75 छात्राओं का चयन कर उनकी शैक्षिक उपलब्धि के मापन हेतु उनके स्नातक स्तर के तृतीय सेमेस्टर के प्रतिशत प्राप्तांको को लिया गया जिसके परिणाम को तालिका 1.2 में दर्शाया गया है।

तालिका-1.2

स्नातक स्तर के छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि का विवरण

शैक्षिक उपलब्धि प्रतिशत	श्रेणी	कुल छात्रायें (75)	
		आवृत्ति	प्रतिशत
90.99	अति उच्च	7	9%
80.89	उच्च	29	39%
70.79	औसत	27	49%
60.69		10	
50.59	निम्न	2	3%
40.49	अति निम्न	0	0%

उपरोक्त तालिका 1.2 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि स्नातक स्तर की 75 छात्राओं के तृतीय सेमेस्टर के प्रतिशत प्राप्तांको के आधार पर उनकी शैक्षिक उपलब्धि से संबंधित प्रदत्तों को एकत्रित कर उन्हें पाँच श्रेणियों में इस प्रकार बाँटा है। 90.99 के मध्य प्रतिशत प्राप्त करने वाली छात्राओं को अति उच्च श्रेणी में रखा गया है। 80.89 के मध्य प्रतिशत प्राप्त करने वाली छात्राओं को उच्च श्रेणी में रखा गया है। 60.79 के मध्य प्रतिशत प्राप्त करने करने वाली छात्राओं को औसत श्रेणी में रखा गया है। 50.59 के मध्य प्रतिशत प्राप्त करने वाली छात्राओं को निम्न श्रेणी में रखा गया है तथा 40.49 के मध्य प्रतिशत प्राप्त करने वाली छात्राओं को अति निम्न श्रेणी में रखा गया है। इस प्रकार एकत्रित प्रदत्तों को सुव्यवस्थित रूप से वर्गीकृत करके आवृत्ति वितरण किया गया है। इन आवृत्ति वितरण के आधार पर कहा जा सकता है कि छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर का कारण उनकी आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक स्थिति, कक्षा में उपस्थिति एवं उनकी बुद्धिलब्धि हो सकते है।

स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन

प्रस्तुत उद्देश्य की पूर्ति हेतु शोधकर्त्ता द्वारा स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि के परिणामों के तुलनात्मक अध्ययन को तालिका 1.3 में दर्शाया गया है।

तालिका–1.3

स्नातक स्तर के छात्र–छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक विवरण

शैक्षिक उपलब्धि प्रतिशत	श्रेणी	कुल छात्र (75)		कुल छात्रायें (75)	
		आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत
90.99	अति उच्च	0	0%	7	9%
80.89	उच्च	18	24%	29	39%
70.79	औसत	30	69%	27	49%
60.69		22		10	
50.59	निम्न	5	7%	2	3%
40.49	अति निम्न	0	0%	0	0%

तालिका 1.3 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि स्नातक स्तर के 90.99 के मध्य प्रतिशत प्राप्त करने वाले अति उच्च श्रेणी के छात्रों का प्रतिशत 0 है जबकि छात्राओं का प्रतिशत 9 है। 80.89 के मध्य प्रतिशत प्राप्त करने वाले उच्च श्रेणी के छात्रों का प्रतिशत 24 है जबकि छात्राओं का प्रतिशत 39 है। 60.79 के मध्य प्रतिशत प्राप्त करने वाले औसत श्रेणी के छात्रों का प्रतिशत 69 है जबकि छात्राओं का प्रतिशत 49 है। 50.59 के मध्य प्रतिशत प्राप्त करने वाले निम्न श्रेणी के छात्रों का प्रतिशत 7 है जबकि छात्राओं का प्रतिशत 3 है तथा 40.49 के मध्य प्रतिशत प्राप्त करने वाले अति निम्न श्रेणी के छात्र एवं छात्राओं का प्रतिशत 0 है। उपरोक्त तालिका 1.3 के निष्कर्ष के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है कि स्नातक स्तर के छात्र–छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर पाया जाता है या नहीं यह जानने के लिए हमें मध्यमान व प्रमाणिक विचलन एवं इन दोनों के मध्य सार्थक अन्तर की जाँच के लिए क्रान्तिक अनुपात की गणना करनी होगी। जिसको तालिका 1.4 में दिखाया गया है।

तालिका–1.4

स्नातक स्तर के छात्र–छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि के प्राप्तांकों का मध्यमान, प्रमाणिक विचलन, क्रान्तिक अनुपात व सार्थकता स्तर का विवरण

कुल विद्यार्थी (150)	मध्यमान (M)	प्रमाणिक विचलन (S.D.)	क्रान्तिक अनुपात (C.R.)	सार्थकता स्तर	परिणाम
छात्र 75	72.63	8.74	3.92	> .01	सार्थक
छात्रायें 75	78.36	9.22			

उपरोक्त तालिका 1.4 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि स्नातक स्तर के 150 छात्र-छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि का मध्यमान क्रमशः 72.63 तथा 78.36 एवं प्रमाणिक विचलन क्रमशः 8.74 तथा 9.22 प्राप्त हुआ। दोनों छात्र-छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सार्थक अन्तर की जाँच के लिए क्रान्तिक अनुपात की गणना की गई जिसका मान 3.92 प्राप्त हुआ जो कि .01 सार्थकता स्तर पर सार्थक है। अतः निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर पाया जाता है। इन अन्तर के पाये जाने का कारण उनकी पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक स्थिति, रूचि, बुद्धिलब्धि, कक्षा में उपस्थिति, माता पिता का प्रोत्साहन एवं व्यक्तिगत भिन्नतायें हो सकते है। छात्रों की तुलना में छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि अधिक होती है क्योंकि छात्राऐं छात्रों की तुलना में पढ़ने में अधिक रूचि लेती है। अतः इससे सम्बन्धित शून्य परिकल्पना 'स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में कोई अन्तर नहीं पाया जाता' अस्वीकृत होती है।

आरेख 1.1

स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि को दर्शाता आवृत्ति वक्र

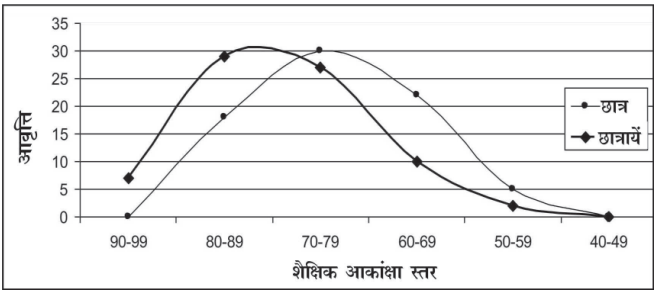

आरेख-1.2

स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि के मध्यमान व प्रमाणिक विचलन को दर्शाता दण्डारेख

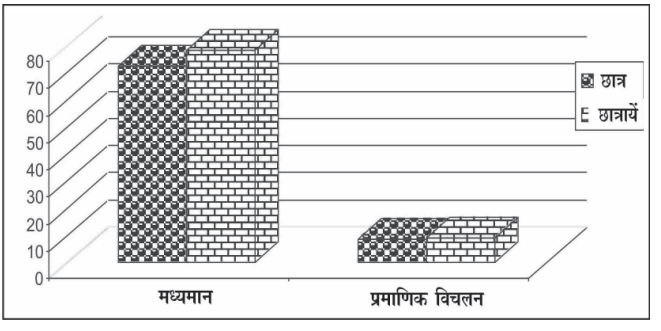

स्नातक स्तर के छात्रों के शैक्षिक आकांक्षा स्तर का अध्ययन

प्रस्तुत उद्देश्य की पूर्ति हेतु शोधकर्ता द्वारा डी.ई.आई. विश्वविद्यालय के तीन संकायो में से 75 छात्रों का चयन कर उनके शैक्षिक आकांक्षा स्तर के मापन हेतु डा. वी.पी. शर्मा एवं डा. अनुराधा गुप्ता द्वारा निर्मित शैक्षिक आकांक्षा स्तर प्रमापीकृत परीक्षण का प्रयोग किया गया जिसके परिणाम को तालिका 1.5 में दर्शाया गया है।

तालिका–1.5

स्नातक स्तर के छात्रों के शैक्षिक आकांक्षा स्तर का विवरण

शैक्षिक आकांक्षा स्तर	श्रेणी	कुल छात्र (75)	
		आवृत्ति	प्रतिशत
48.56	उच्च	3	31%
40.48		20	
32.40	मध्यम	22	51%
24.32		16	
16.24	निम्न	14	18%
8.16		0	

उपरोक्त तालिका 1.5 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि स्नातक स्तर के 75 छात्रों के शैक्षिक आकांक्षा स्तर के मापन हेतु डा. वी.पी. शर्मा एवं डा. अनुराधा गुप्ता द्वारा निर्मित शैक्षिक आकांक्षा स्तर प्रमापीकृत परीक्षण से सम्बन्धित प्रदत्तों को एकत्रित कर उन्हें कुल 3 श्रेणियों में इस प्रकार बाँटा गया है कि 40.56 के बीच आकांक्षा स्तर प्राप्त करने वाले छात्रों को उच्च श्रेणी में रखा गया है। 24.40 के बीच आकांक्षा स्तर प्राप्त करने वाले छात्रों को मध्यम श्रेणी में रखा गया है। 8.24 के बीच आकांक्षा स्तर प्राप्त करने वाले छात्रों को निम्न श्रेणी में रखा गया है। इस प्रकार एकत्रित प्रदत्तों को सुव्यवस्थित रूप से वर्गीकृत करके आवृत्ति वितरण किया गया है। इन आवृत्ति वितरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि छात्रों के शैक्षिक आकांक्षा स्तर में अन्तर पाये जाने का कारण उनकी बुद्धिलब्धि पारिवारिक वातावरण, विद्यालयी वातावरण, सामाजिक वातावरण आदि हो सकते है।

स्नातक स्तर की छात्राओं के शैक्षिक आकांक्षा स्तर का अध्ययन

प्रस्तुत उद्देश्य की पूर्ति हेतु शोधकर्ता द्वारा डी.ई.आई. विश्वविद्यालय की तीन संकायो में से 75 छात्राओं का चयन कर उनके शैक्षिक आकांक्षा स्तर के मापन हेतु डा. वी.पी. शर्मा

एवं डा. अनुराधा गुप्ता द्वारा निर्मित शैक्षिक आकांक्षा स्तर प्रमापीकृत परीक्षण का प्रयोग किया गया जिसके परिणाम को तालिका 1.6 में दर्शाया गया है।

तालिका-1.6

स्नातक स्तर की छात्राओं के शैक्षिक आकांक्षा स्तर का विवरण

शैक्षिक आकांक्षा स्तर	श्रेणी	कुल छात्र (75)	
		आवृत्ति	प्रतिशत
48.56	उच्च	1	25%
40.48		18	
32.40	मध्यम	25	59%
24.32		19	
16.24	निम्न	12	16%
8.16		0	

उपरोक्त तालिका 1.6 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि स्नातक स्तर की 75 छात्राओं के शैक्षिक आकांक्षा स्तर के मापन हेतु डा. वी.पी. शर्मा एवं डा. अनुराधा गुप्ता द्वारा निर्मित शैक्षिक आकांक्षा स्तर प्रमापीकृत परीक्षण से संबंधित प्रदत्तों को एकत्रित कर उन्हें कुल 3 श्रेणियों में इस प्रकार बाँटा गया है कि 40.56 के बीच आकांक्षा स्तर प्राप्त करने वाली छात्राओं को उच्च श्रेणी में रखा गया है। 24.40 के बीच आकांक्षा स्तर प्राप्त करने वाली छात्राओं को मध्यम श्रेणी में रखा गया है। 8.24 के बीच आकांक्षा स्तर प्राप्त करने वाली छात्राओं को निम्न श्रेणी में रखा गया है। इस प्रकार एकत्रित प्रदत्तों को सुव्यवस्थित रूप से वर्गीकृत करके आवृत्ति वितरण किया गया है। इन आवृत्ति वितरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि छात्राओं के शैक्षिक आकांक्षा स्तर में अन्तर का कारण उनकी बुद्धिलब्धि पारिवारिक वातावरण, विद्यालयी वातावरण, सामाजिक वातावरण आदि हो सकते है।

स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं के शैक्षिक आकांक्षा स्तर का तुलनात्मक अध्ययन

प्रस्तुत उद्देश्य की पूर्ति हेतु शोधकर्ता द्वारा स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं के शैक्षिक आकांक्षा स्तर के परिणामों के तुलनात्मक अध्ययन को तालिका 1.7 में दर्शाया गया है।

तालिका–1.7

स्नातक स्तर के छात्र–छात्राओं के शैक्षिक आकांक्षा स्तर का तुलनात्मक विवरण

शैक्षिक आकांक्षा स्तर	श्रेणी	कुल छात्र (75)		कुल छात्रायें (75)	
		आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत
48.56	उच्च	3	31%	1	25%
40.48		20		18	
32.40	मध्यम	22	51%	25	59%
24.32		16		19	
16.24	निम्न	14	18%	12	16%
8.16		0		0	

उपरोक्त तालिका 1.7 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि स्नातक स्तर के 40.56 के बीच आकांक्षा स्तर प्राप्त करने वाले उच्च श्रेणी के छात्रों का प्रतिशत 31 है जबकि छात्राओं का प्रतिशत 25 है। 24.40 के बीच आकांक्षा स्तर प्राप्त करने वाले मध्यम श्रेणी के छात्रों का प्रतिशत 51 है जबकि छात्राओं का प्रतिशत 59 है। 8.24 के बीच आकांक्षा स्तर प्राप्त करने वाले निम्न श्रेणी के छात्रों का प्रतिशत 18 है जबकि छात्राओं का प्रतिशत 16 है। उपरोक्त तालिका 1.7 के निष्कर्ष के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है कि स्नातक स्तर के छात्र–छात्राओं के शैक्षिक आकांक्षा स्तर में अन्तर पाया जाता है या नहीं। यह जानने के लिए हमें मध्यमान व प्रमाणिक विचलन एवं इन दोनों के मध्य सार्थक अन्तर की जाँच के लिए क्रान्तिक अनुपात की गणना करनी होगी जिसको आगे तालिका 1.8 में दिखाया गया है।

तालिका–1.8

स्नातक स्तर के छात्र–छात्राओं के शैक्षिक आकांक्षा स्तर संबंधी प्राप्तांकों का मध्यमान, प्रमाणिक विचलन, क्रान्तिक अनुपात व सार्थकता स्तर का विवरण

कुल विद्यार्थी (150)	मध्यमान (M)	प्रमाणिक विचलन (S.D.)	क्रान्तिक अनुपात (C.R.)	सार्थकता स्तर	परिणाम
छात्र 75	34.08	9.22	0.37	<0.01	असार्थक
छात्रायें 75	33.54	8.36			

उपरोक्त तालिका 1.8 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि स्नातक स्तर के 150 छात्र–छात्राओं के शैक्षिक आकांक्षा स्तर संबंधी प्राप्तांकों का मध्यमान क्रमशः 34.08 तथा 33.54 एवं

प्रमाणिक विचलन क्रमशः 9.22 तथा 8.36 प्राप्त हुआ। छात्र-छात्राओं के शैक्षिक आकांक्षा स्तर के मध्य सार्थक अन्तर की जाँच के लिए क्रान्तिक अनुपात की गणना की गयी जिसका मान 0.37 प्राप्त हुआ जो कि 0.01 सार्थकता स्तर पर असार्थक है। निष्कर्ष के रूप में स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं के शैक्षिक आकांक्षा स्तर में अन्तर नहीं पाया जाता है। अतः इससे सम्बन्धित शून्य परिकल्पना ''स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं के शैक्षिक आकांक्षा स्तर में कोई अन्तर नहीं पाया जाता'' स्वीकृत होती है।

आरेख 1.3

स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं के शैक्षिक आकांक्षा स्तर को दर्शाता आवृत्ति वक्र

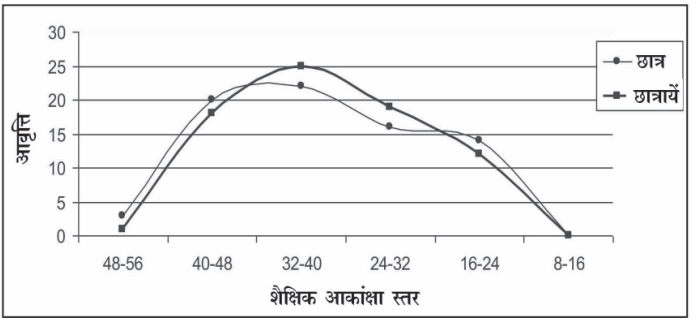

आरेख 1.4

स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं के शैक्षिक आकांक्षा स्तर के मध्यमान व प्रमाणिक विचलन को दर्शाता दण्डारेख

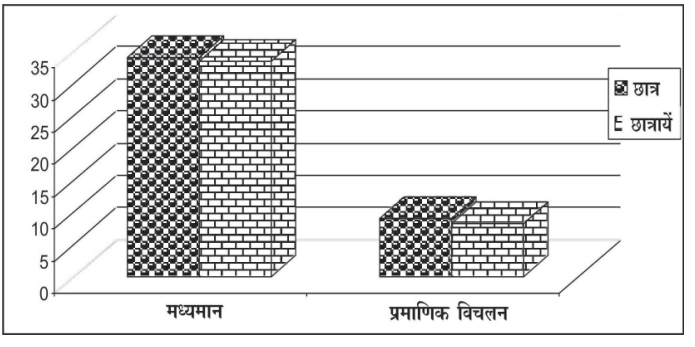

स्नातक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में सहसंबंध का अध्ययन

प्रस्तुत उद्देश्य की पूर्ति हेतु शोधकर्ता द्वारा डी.ई.आई. विश्वविद्यालय के तीन संकायो में से 75 छात्रों का चयन कर उनकी शैक्षिक उपलब्धि के मापन हेतु उनके स्नातक स्तर के तृतीय

सेमेस्टर के प्रतिशत प्राप्तांको को लिया गया तथा उनके शैक्षिक आकांक्षा स्तर के मापन हेतु डा. वी.पी. शर्मा एवं डा. अनुराधा गुप्ता द्वारा निर्मित शैक्षिक आकांक्षा स्तर प्रमापीकृत परीक्षण का प्रयोग किया गया जिसके परिणाम को तालिका 1.9 में दर्शाया गया है–

तालिका 1.9

स्नातक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर का विवरण

शैक्षिक उपलब्धि प्रतिशत	श्रेणी	कुल छात्र (75)		शैक्षिक आकांक्षा स्तर	श्रेणी	कुल छात्र (75)	
		आवृत्ति	प्रतिशत			आवृत्ति	प्रतिशत
90.99	अति उच्च	0	0%	48.56	उच्च	3	31%
80.89	उच्च	18	24%	40.48		20	
70.79	औसत	30	69%	32.40	मध्यम	22	51%
60.69		22		24.32		16	
50.59	निम्न	5	7%	16.24	निम्न	14	18%
40.49	अति निम्न	0	0%	8.16		0	

उपरोक्त तालिका 1.9 के निष्कर्ष के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है कि स्नातक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में सहसंबंध पाया जाता है या नहीं यह जानने के लिए हमें इन दोनों आश्रित चरों के मध्य सार्थक सहसंबंध की जाँच के लिए सहसंबंध गुणांक की गणना करनी होगी। जिसको आगे तालिका 1.10 में दिखाया गया है।

तालिका 1.10

स्नातक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर संबंधी प्राप्तांकों का सहसंबंध गुणांक व सार्थकता स्तर का विवरण

आश्रित चर (कुल छात्र 75)	सहसंबंध गुणांक	सार्थकता स्तर	परिणाम
शैक्षिक उपलब्धि	0.46	>0.01	सार्थक
शैक्षिक आकांक्षा स्तर			

उपरोक्त तालिका 1.10 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि स्नातक स्तर के 75 छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में सहसंबंध की जाँच के लिए सहसंबंध

गुणांक की गणना की गयी जिसका मान 0.46 प्राप्त हुआ जो कि 0.01 सार्थकता स्तर पर सार्थक है। अत: निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते है कि स्नातक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में मध्यम धनात्मक सहसंबंध पाया जाता है। इस सहसंबंध के आधार पर हम कह सकते है कि छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि से उनके शैक्षिक आकांक्षा स्तर का निर्धारण होता है।

अत: इससे सम्बन्धित शून्य परिकल्पना ''स्नातक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में सहसंबंध नहीं पाया जाता'' अस्वीकृत होती है।

स्नातक स्तर की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में सहसंबंध का अध्ययन

प्रस्तुत उद्देश्य की पूर्ति हेतु शोधकर्ता द्वारा डी.ई.आई. विश्वविद्यालय के तीन संकायों में से 75 छात्राओं का चयन कर उनकी शैक्षिक उपलब्धि के मापन हेतु उनके स्नातक स्तर के तृतीय सेमेस्टर के प्रतिशत प्राप्तांकों को लिया गया तथा उनके शैक्षिक आकांक्षा स्तर के मापन हेतु डा. वी.पी. शर्मा एवं डा. अनुराधा गुप्ता द्वारा निर्मित शैक्षिक आकांक्षा स्तर प्रमापीकृत परीक्षण का प्रयोग किया जिसके परिणाम को तालिका 1.11 में दर्शाया गया है–

तालिका 1.11

स्नातक स्तर की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर

शैक्षिक उपलब्धि प्रतिशत	श्रेणी	कुल छात्रायें (75)		शैक्षिक आकांक्षा स्तर	श्रेणी	कुल छात्रायें (75)	
		आवृत्ति	प्रतिशत			आवृत्ति	प्रतिशत
90.99	अति उच्च	7	9%	48.56	उच्च	1	25%
80.89	उच्च	29	39%	40.48		18	
70.79	औसत	27	49%	32.40	मध्यम	25	59%
60.69		10		24.32		19	
50.59	निम्न	2	3%	16.24	निम्न	12	16%
40.49	अति निम्न	0	0%	8.16		0	

उपरोक्त तालिका 1.11 के निष्कर्ष के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है कि स्नातक स्तर की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में सहसंबंध पाया जाता है या नहीं यह जानने के लिए हमें इन दोनों आश्रित चरों के मध्य सार्थक सहसंबंध

की जाँच के लिए सहसंबंध गुणांक की गणना करनी होगी। जिसको आगे तालिका 1.12 में दिखाया गया है।

तालिका 1.12
स्नातक स्तर की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर संबंधी प्राप्तांकों का सहसंबंध गुणांक व सार्थकता स्तर का विवरण

आश्रित चर (कुल छात्रायें 75)	सहसंबंध गुणांक	सार्थकता स्तर	परिणाम
शैक्षिक उपलब्धि शैक्षिक आकांक्षा स्तर	0.55	>0.01	सार्थक

उपरोक्त तालिका 1.12 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि स्नातक स्तर की 75 छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में सहसंबंध की जाँच के लिए सहसंबंध गुणांक की गणना की गयी जिसका मान 0.55 प्राप्त हुआ। जो कि 0.01 सार्थकता स्तर पर सार्थक है। अत: निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते है कि स्नातक स्तर की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में मध्यम धनात्मक सहसंबंध पाया जाता है। इस सहसंबंध के आधार पर हम कह सकते है कि छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि से उनके शैक्षिक आकांक्षा स्तर का निर्धारण होता है। जिन छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि अधिक होती है उनका शैक्षिक आकांक्षा स्तर भी अधिक होता है। जिन छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि कम होती है उनका शैक्षिक आकांक्षा स्तर भी कम होता है। अत: इससे संबंधित शून्य परिकल्पना ''स्नातक स्तर की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में सह संबंध नहीं पाया जाता'' अस्वीकृत होती है।

स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में सहसंबंध का अध्ययन

प्रस्तुत उद्देश्य की पूर्ति हेतु शोधकर्ता द्वारा डी.ई.आई. विश्वविद्यालय के तीन संकायो में से 150 विद्यार्थियों, जिनमें 75 छात्र व 75 छात्रायें है, का चयन कर उनकी शैक्षिक उपलब्धि के मापन हेतु उनके स्नातक स्तर के तृतीय सेमेस्टर के प्रतिशत प्राप्तांको को लिया गया तथा उनके शैक्षिक आकांक्षा स्तर के मापन हेतु डा. वी.पी. शर्मा एवं डा. अनुराधा गुप्ता द्वारा निर्मित शैक्षिक आकांक्षा स्तर प्रमापीकृत परीक्षण का प्रयोग किया गया जिसके परिणाम को तालिका 1.13 में दर्शाया गया है–

तालिका–1.13

स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर का विवरण

शैक्षिक उपलब्धि प्रतिशत	श्रेणी	कुल विद्यार्थी (150)		शैक्षिक आकांक्षा स्तर	श्रेणी	कुल विद्यार्थी (150)	
		आवृत्ति	प्रतिशत			आवृत्ति	प्रतिशत
90.99	अति उच्च	7	5%	48.56	उच्च	4	28%
80.89	उच्च	47	31%	40.48		38	
70.79	औसत	57	59%	32.40	मधयम	47	55%
60.69		32		24.32		35	
50.59	निम्न	7	5%	16.24	निम्न	26	17%
40.49	अति निम्न	0	0%	8.16		0	

उपरोक्त तालिका 1.13 के निष्कर्ष के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है कि स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में सहसंबंध पाया जाता है या नहीं यह जानने के लिए हमें इन दोनों आश्रित चरों के मध्य सार्थक सहसंबंध की जाँच के लिए सहसंबंध गुणांक की गणना करनी होगी। जिसको आगे तालिका 1.14 में दिखाया गया है।

तालिका 1.14

स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर संबंधी प्राप्तांकों का सहसंबंध गुणांक व सार्थकता स्तर का विवरण

आश्रित चर (कुल विद्यार्थी 150)	सहसंबंध गुणांक	सार्थकता स्तर	परिणाम
शैक्षिक उपलब्धि	0.86	> 0.01	सार्थक
शैक्षिक आकांक्षा स्तर			

उपरोक्त तालिका 1.14 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि स्नातक स्तर के 150 विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में सहसंबंध की जाँच के लिए सहसंबंध गुणांक की गणना की गयी। जिसका मान 0.86 प्राप्त हुआ जो कि 0.01 सार्थकता स्तर पर सार्थक है। अत: निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते है कि स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में उच्च धनात्मक सहसंबंध

पाया जाता है। इस सहसंबंध के आधार पर हम कह सकते है कि विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि से उनके शैक्षिक आकांक्षा स्तर का निर्धारण होता है। जिन विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि अधिक होती है उनका शैक्षिक आकांक्षा स्तर भी अधिक होता है। जिन विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि कम होती है उनका शैक्षिक आकांक्षा स्तर भी कम होता है। अत: इससे संबंधित शून्य परिकल्पना ''स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में सहसंबंध नहीं पाया जाता'' अस्वीकृत होती है।

शोध अध्ययन की उपलब्धियाँ

स्नातक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन

स्नातक स्तर के छात्रों को उनकी शैक्षिक उपलब्धि के आधार पर 5 श्रेणियों अति उच्च, उच्च, औसत, निम्न तथा अति निम्न में विभाजित किया गया। अति उच्च श्रेणी में 0 प्रतिशत छात्र, उच्च श्रेणी में 24 प्रतिशत छात्र, औसत श्रेणी में 69 प्रतिशत छात्र, निम्न श्रेणी में 7 प्रतिशत छात्र तथा अति निम्न श्रेणी में 0 प्रतिशत छात्र प्राप्त हुए। इन छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर के पाये जाने का कारण उनकी आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक स्थिति तथा व्यक्तिगत भिन्नताएँ आदि हो सकते है।

स्नातक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि से सम्बन्धित मध्यमान 72.63 प्राप्त हुआ तथा प्रमाणिक विचलन 8.74 प्राप्त हुआ।

स्नातक स्तर की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन

स्नातक स्तर की छात्राओं को उनकी शैक्षिक उपलब्धि के आधार पर 5 श्रेणियों अति उच्च, उच्च, औसत, निम्न तथा अति निम्न में विभाजित किया गया। अति उच्च श्रेणी में 9 प्रतिशत छात्रायें, उच्च श्रेणी में 39 प्रतिशत छात्रायें, औसत श्रेणी में 49 प्रतिशत छात्रायें, निम्न श्रेणी में 3 प्रतिशत छात्रायें तथा अति निम्न श्रेणी में 0 प्रतिशत छात्रायें प्राप्त हुई। इन छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर के पाये जाने का कारण उनकी आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक स्थिति तथा व्यक्तिगत भिन्नताएँ आदि हो सकते है।

स्नातक स्तर की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि से सम्बन्धित मध्यमान 78.36 प्राप्त हुआ तथा प्रमाणिक विचलन 9.22 प्राप्त हुआ।

स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन

स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि का मध्यमान क्रमश: 72.63 तथा 78.36 एवं प्रमाणिक विचलन क्रमश: 8.74 तथा 9.22 प्राप्त हुआ। दोनों छात्र-छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सार्थक अन्तर की जाँच के लिए क्रान्तिक अनुपात की गणना की

गई जिसका मान 3.92 प्राप्त हुआ है जो कि 0.01 सार्थकता स्तर पर सार्थक है। स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर पाया गया। छात्रों की तुलना में छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि अधिक पाई गई। इन अन्तर के पाये जाने का कारण उनकी बुद्धिलब्धि, रूचि, कक्षा में उपस्थिति तथा माता-पिता का प्रोत्साहन आदि हो सकते है।

अत: इससे सम्बन्धित शून्य परिकल्पना 'स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में कोई अन्तर नहीं पाया जाता' अस्वीकृत होती है।

स्नातक स्तर के छात्रों के शैक्षिक आकांक्षा स्तर का अध्ययन

स्नातक स्तर के छात्रों को उनके शैक्षिक आकांक्षा स्तर के आधार पर 3 श्रेणियों उच्च, मध्यम तथा निम्न में विभाजित किया गया। उच्च श्रेणी में 31 प्रतिशत छात्र, मध्यम श्रेणी में 51 प्रतिशत छात्र, तथा निम्न श्रेणी में 18 प्रतिशत छात्र प्राप्त हुए। इन छात्रों के शैक्षिक आकांक्षा स्तर में अन्तर के पाये जाने का कारण उनकी बुद्धिलब्धि, पारिवारिक वातावरण, विद्यालयी वातावरण, सामाजिक वातावरण तथा उनकी व्यक्तिगत आकांक्षा आदि हो सकते है।

स्नातक स्तर के छात्रों के शैक्षिक आकांक्षा स्तर से सम्बन्धित मध्यमान 34.08 प्राप्त हुआ तथा प्रमाणिक विचलन 9.22 प्राप्त हुआ।

स्नातक स्तर की छात्राओं के शैक्षिक आकांक्षा स्तर का अध्ययन

स्नातक स्तर की छात्राओं को उनके शैक्षिक आकांक्षा स्तर के आधार पर 3 श्रेणियों उच्च, मध्यम तथा निम्न में विभाजित किया गया। उच्च श्रेणी में 25 प्रतिशत छात्रायें, मध्यम श्रेणी में 59 प्रतिशत छात्रायें, तथा निम्न श्रेणी में 16 प्रतिशत छात्रायें प्राप्त हुई। इन छात्राओं के शैक्षिक आकांक्षा स्तर में अन्तर के पाये जाने का कारण उनकी बुद्धिलब्धि, पारिवारिक वातावरण, विद्यालयी वातावरण, सामाजिक वातावरण तथा उनकी व्यक्तिगत आकांक्षा आदि हो सकते है।

स्नातक स्तर की छात्राओं के शैक्षिक आकांक्षा स्तर से सम्बन्धित मध्यमान 33.54 प्राप्त हुआ तथा प्रमाणिक विचलन 8.36 प्राप्त हुआ।

स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं के शैक्षिक आकांक्षा स्तर का तुलनात्मक अध्ययन

स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं के शैक्षिक आकांक्षा स्तर का मध्यमान क्रमश: 34.08 तथा 33.54 एवं प्रमाणिक विचलन क्रमश: 9.22 तथा 8.36 प्राप्त हुआ। दोनों छात्र-छात्राओं के शैक्षिक आकांक्षा स्तर के मध्य सार्थक अन्तर की जाँच के लिए क्रान्तिक अनुपात की गणना की गई जिसका मान 0.37 प्राप्त हुआ जो कि 0.01 सार्थकता स्तर पर असार्थक है। स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं के शैक्षिक आकांक्षा स्तर में अन्तर नहीं पाया गया।

अत: इससे सम्बन्धित शून्य परिकल्पना 'स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं के शैक्षिक आकांक्षा स्तर में कोई अन्तर नहीं पाया जाता' स्वीकृत होती है।

स्नातक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में सहसंबंध का अध्ययन

स्नातक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में सहसंबंध की जाँच के लिए सहसंबंध गुणांक की गणना की गई। जिसका मान 0.46 प्राप्त हुआ जो कि .01 सार्थकता स्तर पर सार्थक है। अत: स्पष्ट है कि स्नातक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में मध्यम धनात्मक सहसंबंध पाया जाता है। इस सहसंबंध के आधार पर छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि से उनके शैक्षिक आकांक्षा स्तर का निर्धारण होता है। अत: इससे सम्बन्धित शून्य परिकल्पना 'स्नातक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में कोई सहसंबंध नहीं पाया जाता' अस्वीकृत होती है।

स्नातक स्तर की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में सहसंबंध का अध्ययन

स्नातक स्तर की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में सहसंबंध की जाँच के लिए सहसंबंध गुणांक की गणना की गई। जिसका मान 0.55 प्राप्त हुआ जो कि 0.01 सार्थकता स्तर पर सार्थक है। अत: स्पष्ट है कि स्नातक स्तर के छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में मध्यम धनात्मक सहसंबंध पाया जाता है। इस सहसंबंध के आधार पर छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि से उनके शैक्षिक आकांक्षा स्तर का निर्धारण होता है।

अत: इससे सम्बन्धित शून्य परिकल्पना 'स्नातक स्तर के छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में कोई सहसंबंध नहीं पाया जाता' अस्वीकृत होती है।

स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में सहसंबंध का अध्ययन

स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में सहसंबंध की जाँच के लिए सहसंबंध गुणांक की गणना की गई जिसका मान 0.86 प्राप्त हुआ जो कि 0.01 सार्थकता स्तर पर सार्थक है। स्पष्ट है कि स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में उच्च धनात्मक सहसंबंध पाया है। इस सहसंबंध के आधार पर विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि से उनके शैक्षिक आकांक्षा स्तर का निर्धारण होता है। जिन विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि अधिक होती है उनका

शैक्षिक आकांक्षा स्तर भी अधिक होता है। जिन विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि कम होती है उनका शैक्षिक आकांक्षा स्तर भी कम होता है।

अत: इससे सम्बन्धित शून्य परिकल्पना 'स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में कोई सहसंबंध नहीं पाया जाता' अस्वीकृत होती है।

शोध अध्ययन द्वारा प्राप्त निष्कर्ष

सम्पूर्ण प्रदत्तों के विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि-

1. स्नातक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर पाया जाता है। इस अन्तर के पाये जाने का कारण उनकी आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक स्थिति तथा व्यक्तिगत भिन्नताएँ आदि हो सकते हैं।
2. स्नातक स्तर के छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर पाया जाता है। इस अन्तर के पाये जाने का कारण उनकी आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक स्थिति तथा व्यक्तिगत भिन्नताएँ आदि हो सकते हैं।
3. स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में 0.01 सार्थकता स्तर पर सार्थक अन्तर पाया जाता है। इन अन्तर के पाये जाने का कारण उनकी बुद्धिलब्धि, रूचि, कक्षा में उपस्थिति, माता-पिता का प्रोत्साहन आदि हो सकते है। छात्रों की तुलना में छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि अधिक होती है।
4. स्नातक स्तर के छात्रों के शैक्षिक आकांक्षा स्तर में अन्तर पाया जाता है। इस अन्तर के पाये जाने का कारण उनकी बुद्धिलब्धि, पारिवारिक वातावरण, विद्यालयी वातावरण, सामाजिक वातावरण तथा उनकी व्यक्तिगत आकांक्षा आदि हो सकते हैं।
5. स्नातक स्तर की छात्राओं के शैक्षिक आकांक्षा स्तर में अन्तर पाया जाता है। इस अन्तर के पाये जाने का कारण उनकी बुद्धिलब्धि, पारिवारिक वातावरण, विद्यालयी वातावरण, सामाजिक वातावरण तथा उनकी व्यक्तिगत आकांक्षा आदि हो सकते हैं।
6. स्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं के शैक्षिक आकांक्षा स्तर में 0.01 सार्थकता स्तर पर अन्तर नहीं पाया जाता है।
7. स्नातक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में 0.01 सार्थकता स्तर पर मध्यम धनात्मक सहसंबंध पाया जाता है। इन सहसंबंध के आधार पर छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि से उनके शैक्षिक आकांक्षा स्तर का निर्धारण होता है। जिन छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि अधिक होती है, उनका शैक्षिक आकांक्षा स्तर भी अधिक होता है तथा जिन छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि कम होती है उनका शैक्षिक आकांक्षा स्तर भी कम होता है।

8. स्नातक स्तर के छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में 0.01 सार्थकता स्तर पर मध्यम धनात्मक सहसंबंध पाया जाता है। इस सहसंबंध के आधार पर छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि से उनके शैक्षिक आकांक्षा स्तर का निर्धारण होता है। जिन छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि अधिक होती है उनका शैक्षिक आकांक्षा स्तर भी अधिक होता है तथा जिन छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि कम होती है उनका शैक्षिक आकांक्षा स्तर भी कम होता है।
9. स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में 0.01 सार्थकता स्तर पर उच्च धनात्मक सहसंबंध पाया जाता है। इस सहसंबंध के आधार पर विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि से उनके शैक्षिक आकांक्षा स्तर का निर्धारण होता है जिन विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि अधिक होती है उनका शैक्षिक आकांक्षा स्तर भी अधिक होता है। जिन विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि कम होती है उनका शैक्षिक आकांक्षा स्तर भी कम होता है।

शोध अध्ययन का शैक्षिक निहितार्थ

किसी भी शोध अध्ययन की सार्थकता उनकी उपादेयता पर आश्रित होती है तथा इसके अभाव में अनुसंधान पूर्णत: महत्वहीन प्रतीत होता है। प्रस्तुत शोध अध्ययन के आधार पर प्राप्त उपलब्धियाँ व उनसे निकाले गये निष्कर्ष निम्नलिखित दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं–

1. शिक्षक इस बात की जानकारी देने में सहायक होंगे कि वह छात्रों को उनकी क्षमताओं, योग्यताओं को पहचानने हेतु उपयुक्त अवसर प्रदान करें जिससे वे अपनी क्षमताओं के अनुरूप अपने लिए उचित लक्ष्य का निर्माण कर सकें।
2. विद्यार्थियों को आगे बढ़ाने के लिऐ उन्हें उचित मार्ग निर्देशन दिया जा सकता है।
3. विद्यार्थियों की रूचियों, आवश्यकताओं, आकांक्षा स्तर तथा योग्यताओं को ध्यान में रखते हुए उन्हें प्रोत्साहित किया जा सकता है।
4. कॉलेज में अच्छा वातावरण उपलब्ध कराया जा सकता है जिससे विद्यार्थी अपनी शैक्षिक उपलब्धि व शैक्षिक आकांक्षा स्तर को प्राप्त करने में सक्षम हो सकें।
5. कॉलेज में विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर को बढ़ाने के लिए नवीनतम ज्ञान प्रदान करने की व्यवस्था की जा सकती है।
6. कॉलेज में सभी विषयों को महत्व दिया जाए जिससे उनका अध्ययन करके वह अपनी शैक्षिक उपलब्धि का तथा शैक्षिक आकांक्षा स्तर का मूल्यांकन कर सकें।

शोध अध्ययन की सीमाएँ

1. प्रस्तुत शोध अध्ययन को आगरा शहर के डी.ई.आई. विश्वविद्यालय तक ही सीमित रखा गया है।

2. प्रस्तुत शोध अध्ययन में स्नातक स्तर के तृतीय सेमेस्टर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया है।
3. प्रस्तुत शोध अध्ययन में स्नातक स्तर के तीन संकाय वाणिज्य संकाय, विज्ञान संकाय एवं सामाजिक विज्ञान संकाय के विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया है।
4. प्रस्तुत शोध अध्ययन में न्यादर्श के रूप में 150 विद्यार्थियों जिसमें 75 छात्र व 75 छात्राऐं है को सम्मिलित किया गया है।

संदर्भ

गिलफोर्ड, जे.पी. (1956). फन्डामेन्टल स्टैटिसटिक्स इन साइकोलॉजी एण्ड एजुकेशन. मैक्ग्रा हिल बुक कम्पनी, न्यूयार्क।

ड्रेवर, जेम्स (1956). ए डिक्सनरी ऑफ साइक्लोजी न्यूयार्क. पेन्जन बुक्स लि0 मिडिलसेक्स।

एनास्टासी, एन. (1961). मनोवैज्ञानिक परीक्षण. दि मेकमिलन एण्ड कम्पनी, न्यूयार्क।

बेस्ट, जॉन. डब्ल्यू. (1963). रिसर्च इन एजुकेशन. प्रिन्टिस हॉल ऑफ इण्डिया प्रा.लि. नई दिल्ली।

गुड, बार एण्ड स्केट्स (1964). द मैथोडोलॉजी ऑफ एजुकेशनल रिसर्च. एप्लीटोन सैंचुरी क्राफ्ट्स, न्यूयार्क।

यंग, पी.वी. (1966). साइंटिफिक सोशल सर्वे एण्ड रिसर्च इन एजुकेशन. एशिया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।

बुच, एम.बी. (1974). ए सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन. केस एम.एस. यूनिवर्सिटी, बड़ौदा।

नुनैली, जे.सी. (1975). इन्ट्रोडक्शन टू स्टैटिसटिक्स फॉर साइकोलॉजी एण्ड एजुकेशन. मैक्ग्रा हिल बुक कम्पनी, न्यूयार्क।

कॉल, लोकेश (1984). मैथोडोलॉजी ऑफ एजुकेशनल रिसर्च. विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा0लि0, नई दिल्ली।

शर्मा, आर.ए. (1985). फन्डामेन्टल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च एण्ड स्टैटिसटिक्स. आर.लाल बुक डिपो, मेरठ।

कोठारी, सी.आर. (1985). रिसर्च मैथोडोलॉजी मैथर्ड एण्ड टैक्निक्स. विले इस्टर्न लि. मुम्बई।

गैरिट, हेनरी ई. (1986). स्टैटिसटिक्स इन साइकोलॉजी एण्ड एजुकेशन. लीगमेन्स ग्रीन एण्ड कम्पनी, न्यूयार्क।

शर्मा, वी.पी. एण्ड गुप्ता, अनुराधा (1998). मैनुअल फॉर एजुकेशनल एसपिरेशन स्केल. नेशनल साइकोलॉजीकल कॉरपोरेशन, आगरा।

बाला, निधि (2000). माता के व्यवसाय व पारिवारिक आय का बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि के संबंध का अध्ययन. एम.ए. श्रीवास्तव (सम्पादक) भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, लखनऊ- इंडियन इन्स्टीट्यूट ऑफ एजुकेशनल रिसर्च वर्ष 19, अंक 2, 2000।

नलिनी, देवी के. (2001). पूर्व किशोरावस्था के किशोरों की अध्ययन आदतों एवं शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन. रिसर्च जर्नल ऑफ अविनाशीलिंगम इन्स्टीट्यूट, वाल्यूम 11(3), पृ. 179।

नायक, चितरंजन (2002). एकेडमिक अचीवमेंट ऑफ सेकेण्डरी स्टूडेंट्स इन रिलेशन टू देअर इंटेलीजेंस एण्ड एटीट्यूड टुवार्डस स्कूलिंग प्रोसेस. retrieved from http://www.educationinindia.net/download/researchabstracts.pdf.

स्लायवा एण्ड मेल हुईन्स (2004). रिलेशनशिप विटवीन लेबिल ऑफ एसपीरेशन परफोरमेन्स, पास्ट परफोरमेन्स एण्ड फ्यूचर परफोरमेन्स. साइकोलोजिकल एब्सट्रेक्ट, 93(6)।

पाल, देवेन (2005). उच्च माध्यमिक कक्षा में अध्ययनरत विद्यार्थियों के सामाजिक-आर्थिक स्तर एवं विद्यालयी उपलब्धि के संबंध में अध्ययन. भारतीय शोध पत्रिका, वर्ष 25, अंक 4, लखनऊ।

दीक्षित, शालिनी (2006). गृह पर्यावरण का विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन. अनपब्लिश्ड एम.एड. डिजरटेशन, शिक्षा संकाय, डी.ई.आई. डीम्ड यूनिवर्सिटी, आगरा।

ए., जैनिक (2006). महाविद्यालयी वातावरण के दायरे में शैक्षिक उपलब्धि और प्रेरणा पर सामाजिक पृष्ठभूमि के प्रभाव का अध्ययन. इण्टरनेशनल डिजर्टेशन एब्सट्रैक्ट, वॉल्यूम 67, अंक 08।

वॉल्कर (2006). दी एस्पीरेशन फोरमेशन ऑफ डिसएडवान्टेज जमेइकन मेलयूथस. एम.बी. बुच, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली।

डेसनन, आर.पी. (2007). द रिलेशनशिप ऑफ पेरेन्टल इन्वायरमेन्ट ऑन द स्टूडेन्ट अचीवमेन्ट ऑफ इलेविन्थ ग्रेड्स. http/www.eric.ed.gor.

केम्पबेल (2008). इफैक्ट ऑफ अर्ली इन्टरवेन्सन ऑन इन्टेलेक्चुअल एण्ड अकेडमिक अचीवमेन्ट. ए फोलो अप स्टडी ऑफ चिल्ड्रन फ्रॉम लॉ इनकम फेमिली, रेट्रिव्ड फ्रॉम http://onlinelibrary.wiley.com/doi/10.iiii/j.1467-8624. 1994.tb00777.r/abstractA

मूडी (2008). फेक्टर्स अफेक्टिंग द लेविल ऑफ एसपीरेशन एण्ड एक्सपेक्टेशन ऑफ यूनिवर्सिटी स्टूडेन्ट्स इन चायना. इण्टरनेशनल डेजरटेशन एब्स्ट्रेक्ट, वॉल्यूम 68।

कुशवाह, सोनिया (2009). स्नातक स्तर पर छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि व अध्ययन आदतों का अध्ययन. अनपब्लिश्ड एम.एड. डिजरटेशन, शिक्षा संकाय, डी.ई.आई. डीम्ड यूनिवर्सिटी, आगरा।

अग्रवाल, सरस्वती (2010). विद्यार्थियों की कक्षा में उपस्थिति तथा शैक्षिक उपलब्धि के मध्य संबंध का अध्ययन. एस.एस. श्रीवास्तव (सं.) भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, लखनऊ-इंडियन इन्स्टीट्यूट ऑफ एजुकेशनल रिसर्च वर्ष 19, अंक 1, 2010।

डंगवाल, किरनलता (2011). कक्षा पंचम के विद्यार्थियों में कुण्ठा प्रतिक्रिया तथा शैक्षिक उपलब्धि में संबंध का अध्ययन. एस.एस. श्रीवास्तव (सम्पादक) भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, लखनऊ- इंडियन इन्स्टीट्यूट ऑफ एजुकेशनल रिसर्च, वर्ष 19, अंक 2, 2011।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 25, अंक 3, दिसंबर 2018

शोध टिप्पणी/संवाद

शिक्षा को गढ़ती राजनीति

कौशलेंद्र प्रपन्न*

सारांश

राजनीति आकाश में न तो निर्मित होती है और न ही समाजेत्तर इसका अनुकरण होता है। राजनीति दरअसल समाज और राष्ट्र को नई दिशा प्रदान करने की ताकत से लबरेज़ होती है। मानव विकास के इतिहास और भूगोल को देखें या फिर अर्थशास्त्र या फिर समाज-संस्कृति को उक्त महत्वपूर्ण आयामों को आकार देने में राजनीति की भूमिका निर्विवाद तौर पर अहम रही है। राजनीति ने ही समाज के विकास और विस्थापन की स्थितियां भी पैदा की हैं। क्या इस तथ्य से मुंह मोड़ सकते हैं कि राजनीति ही थी जिसने 1947 के विश्व के इतिहास में दर्ज़ सबसे बड़ी तकसीम को अंजाम दिया। कई बार लगता है राजनीति शिक्षा को भी कहीं न कहीं प्रभावित करती रही है। आज़ादी से पूर्व और आज़ादी के बाद की शिक्षा नीतियों और राजनीति ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति और दिशा को तय करने में ख़ासी अहम भूमिका अदा की हैं। वह चाहे माध्यमिक शिक्षा समिति हो, कोठारी आयोग हो, राष्ट्रीय शिक्षा नीति हो, या फिर 1977, 1985,1988, 2000 या फिर 2005 की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा ही क्यों न हो। इन तमाम समितियों, नीतियों के निर्धारण में राजनीति ने अपनी छाप छोड़ी है। दूसरे शब्दों में कहें तो शिक्षा में राजनीतिक हस्तक्षेप को नजरअंदाज नहीं कर सकते। प्रकारांतर से राजनीति की दिशा तय करने में व्यक्ति की प्रमुखता भी रेखांकित की जाती रही है। जो भी व्यक्ति सत्ता में आया उसने अपनी राजनीतिक स्थापनाओं, मान्याओं को शिक्षा की काया में समाहित करने की पुरजोर

*भाषा एवं शिक्षा शास्त्र विशेषज्ञ

कोशिश है। इसी का परिणाम है कि शिक्षा में जाने अनजाने वैसे कंटेंट भी शामिल किए गए जो अपने आप में विवादों को जन्म देने वाले थे। किन्तु क्योंकि सत्ता चाहती थी इसलिए उन्हें पाठ्यपुस्तकों का हिस्सा बनाया गया। मिसाल के तौर पर शंगूर आंदोलन को वर्तमान सरकार पाठ्यपुस्तकों में शामिल कर चुकी है। वहीं दूसरी राजनेता ने अपनी आत्मकथा को बच्चों के बस्ते में ठूंस दिया। वह दीगर बात है कि वह आत्मकथा क्या कंटेंट के लिहाज से समीक्षित की गई। किस विद्वत् मंडल ने समीक्षा कर अपनी रिपोर्ट सौंपी कि यह आत्मकथा पढ़ने-पढ़ाने योग्य है आदि। इस प्रकार राजनीति व्यक्तियों की आत्मकथाएं पाठ्यपुस्तकों में पहले भी शामिल की जाती रही हैं किन्तु उसका अपना ऐतिहासिक और राजनैतिक विकास यात्रा को समझने के औजार के तौर पर जांचा परखा गया और तब शामिल किया गया। यदि पत्रों की बात करें तो नेहरू के ख़तों को बतौर पाठ्य सामग्री में शामिल किया गया है। इसे पढ़ते-पढ़ाते हुए कई पीढ़ी बड़ी हुई है। राजनैतिक व्यक्तियों की जीवनियां भी शामिल की गईं जिनमें राजेंद्र प्रसाद, लाल बहादुर शास्त्री, गांधीजी, नेहरू, अब्दुल कलाम आदि। इनकी जीवनियों, संघर्षों से गुजरते हुए कहीं न कहीं हमारे बच्चों को जीवन-संघर्षों की एक झांकी तो मिलती ही है, साथ ही भविष्य की रणनीति बनाने में भी मदद मिलती है।

शिक्षा न केवल समाज, बल्कि समाज से जुड़ी हर चीज को आकार दिया करती है। इसे स्वीकारने में ज़रा भी गुरेज़ नहीं होना चाहिए कि इस शिक्षा को गढ़ने, आकार देने में राजनीतिक इच्छा शक्ति और पार्टी की बड़ी भूमिका होती है। बल्कि राजनीति शिक्षा की पूरी कुंडली लिखती है। जब जब जो भी सत्ता में आया, वह शिक्षा के वर्तमान और भविष्य की रूपरेखा लिखने में पीछे नहीं रहा। एक लंबा इतिहास है जब राजनीति ने शिक्षा की दिशा और दशा को ही मोड़ दिया। ज़्यादा पीछे इतिहास में न भी जाएं तो एक बड़ी राजनीतिक इच्छा शक्ति और राजनीतिक हस्तक्षेप को यहां उदाहरण के तौर पर पेश कर सकते हैं। सन् 2014 में सत्ता में आते ही वर्तमान केंद्र सरकार ने घोषणा की थी कि आगामी एक या दो साल के अंदर नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति लाई जाएगी। हालांकि यह भी राजनैतिक सच है कि हम हर पांच साल बाद लोकसभा चुनाव में व्यस्त होते हैं। इस व्यस्तता में हम भूल जाते हैं कि हमने पिछली बार क्या क्या घोषणाएं की थीं। उन

घोषणाओं के साथ क्या किया यह किसी से भी छुपी नहीं है। सरकार आई और अब नई सरकार गठन का वक़्त भी सिर पर है, लेकिन शिक्षा नीति मालूम नहीं कहां है। जो भी नई सरकार आएगी वह फिर शुरू से इस नीति पर काम करेगी। इस पांच वर्ष में जितने लाभ हासिल करने वाले बच्चे थे वे पांचवीं पास कर छठी कक्षा में और बारहवीं पास कर कॉलेज में चले जाएंगे। कॉलेज से निकल कर जॉब की तलाश में जुट जाएंगे। सरकार को कोई फर्क नहीं पड़ा कि जो नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति आनी थी उसके न आने से किन किन को किस प्रकार की क्षति हुई होगी। यह तो एक ताजा तरीन राजनीतिक घटना है। इसके अलावा समय समय पर इससे भी बड़ी घटनाएं शिक्षा जगत में घटती रहती हैं। इस ओर न तो सरकार, न राजनीतिक दलों और न नागर समाज के पेशानी पर बल पड़ता है। अपने अपने कार्यकाल संपन्न कर वे तो चले जाते हैं किन्तु पीछे एक बड़ा सवाल ज़रूर छोड़ जाते हैं कि शिक्षा की दशा और दिशा तय करने वाले किस कदर अगंभीर हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति निर्माण का मसला हो या फिर राष्ट्रीय पाठ्यचर्या निर्माण, पाठ्यपुस्तक निर्माण आदि के साथ भी जिस प्रकार की गंभीरता की मांग होती है उसके साथ राजनीतिक शक्तियां अपना दल बल इस्तमाल किया करतीं हैं। वह चाहे 2000 से पूर्व की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा हो या फिर उसके बाद की इस दस्तावेजों में भी सत्तारूढ़ पार्टियों ने अपनी दूरगामी वैचारिक पूर्वग्रहों को पिरोने में कोई भी कसर नहीं छोड़ी। यही हालत पाठ्यपुस्तक निर्माण में भी देख सकते हैं। समय समय पर वर्तमान राजनीतिक व्यक्ति को पाठ्यपुस्तकों में शामिल करना, पूर्व के पाठों को हटाने का खेल भी खूब खेला गया है। गौरतलब है कि 2000-2002 में फलां पृष्ठ को हटाया गया ढिमका पृष्ठ को न पढ़ाने के फरमान जारी किए गए। इन विवादों में कई बार उच्च न्यायालय को हस्तक्षेप करने पड़े यह दौर है 2002 का। वर्तमान सरकारें चाहे वो केंद्र की हो या फिर राज्य की अपनी अपनी राजनीति उपलब्धि को बच्चों की पाठ्यपुस्तकों में ठूंस दिया गया। इसमें बंगाल, राजस्थान, बिहार आदि राज्य सरकारें शामिल हैं। सरकारें कैसे भूल जाती हैं कि सरकारें आती जाती हैं किन्तु पाठ्यपुस्तकें कम से कम पांच दस और पंद्रह साल तक चला करती हैं। इन्हें पढ़कर लाखों बच्चे युवा और प्रौढ़ बन कर समाज में विभिन्न सेवाओं में आते हैं। वे उन्हीं वैचारिक पूर्वग्रहों को अग्रसारित करने में जुट जाते हैं। जबकि शिक्षा वैज्ञानिक सोच और विवेक निर्माण की वकालत करती है। बच्चों में वैचारिक और बौद्धिक विकास में शिक्षा की अहम भूमिका को कदापि नज़रअंदाज़ नहीं कर सकते।

आज़ादी पूर्व के इतिहास में झांकें तो पाएंगे कि शिक्षा और शिक्षकों की भूमिका और ताकत को हमेशा ही राजनीतिक धड़ों ने अपने हाथों में रखा और उसे अपने स्वार्थ साधक के तौर पर इस्तेमाल किया। शिक्षकों की अस्मिता को कमतर करने में भी तत्कालीन सत्ताधारियों ने कोई कसर उठा नहीं रखी। शिक्षकों को नौकरी और वेतनभोगी बनाने से लेकर उन्हें समाज के उस वर्ग में शामिल करने में कोई कसर नहीं छोड़ी जहां शिक्षक वेतनभोगी होते ही समाज के अन्य वर्गों में विश्वास खोता रहा। विभिन्न शैक्षणिक समितियों ने शिक्षा की दिशा तय की हो या न की हो लेकिन यदि उनकी सिफारिशों पर नजर दौड़ाएं तो पाएंगे कि नीति, मूल्य, आदर्श की जमीन पर बहुत पुख्ता थीं। यह दीगर बात है कि उन्हें कभी भी अमल में नहीं लाया गया। कोठारी समिति की सिफारिशों को ही ले लें। हम आज भी कोठारी आयोग की सिफारिशों की दुहाई दिया करते हैं। वह चाहे बजट को लेकर हो, निकट स्कूल व्यवस्था की हो या फिर शिक्षक: बच्चे अनुपात से संबंधित। हमारी सरकारें सिर्फ इन सिफारिशों के साथ मजाक ही करती रहीं। वहीं 1985–88 पुनरीक्षित राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा बड़ी ही शिद्दत से पूर्व प्राथमिक से लेकर प्राथमिक और उच्च प्राथमिक, माध्यमिक आदि शिक्षा में कला शिक्षा को शामिल करती है। यह दस्तावेज़ मानता है और सिफारिश करता है कि कला की शिक्षा के द्वारा अन्य विषयों को पढ़ाया जाए। दूसरे शब्दों में कहें तो कला की शिक्षा को अन्य विषयों में पिरोया जाए ताकि कला अलग से पढ़ाने की आवश्यकता ही न पड़े। किन्तु हमने इसे कभी तवज्जो ही नहीं दिया। इसके पीछे के कारणों की परतें खोलें तो पाएंगे कि वह कहीं न कहीं राजनीतिक इच्छा शक्ति की कमी रही है।

तब की वर्तमान सरकार ही हैं जिसने वैश्विक उदारीकरण और वैश्विक बाजार के लिए शिक्षा के दरवाजे खोले थे। तब के शिक्षाविदों, शिक्षाकर्मियों ने कोई ख़ास और सशक्त विरोध नहीं किए। पूरा का पूरा विश्वविद्यालय, शिक्षायी नागर समाज मौन था। यही वो प्रस्थान बिंदु हैं जहां से 1986–88 के आस–पास भारतीय शिक्षा में बाजार और वैश्विक बैंकों के लिए ख़ासकर शिक्षा की दहलीज़ सौंपी गई थी। इस ऐतिहासिक घटना पर तत्कालीन अकादमिक महकमा, कॉलेज, विश्वविद्यालय आदि मौन साधे बैठे थे। तब क्या अनुमान लगा सकते थे कि हमारी सरकारी शिक्षा के समक्ष एक समानांतर शिक्षा संस्थानों की दुकानें खुल जाएंगी, जहां आम परिवार का बच्चा प्रवेश करने की सोच भी नहीं सकता। जहां एक ओर बी.एड. सरकारी संस्थानों में बामुश्किलन 5 से दस हजार रुपए में ही किए जा सकते हैं वहीं निजी संस्थानों में छात्रों को अस्सी से नब्बे हजार रुपये खर्च करने पड़ते हैं। यह तो एक कोर्स का उदाहरण है। पूरे भारतवर्ष के

विभिन्न शैक्षणिक कोर्स की फीस पर नजर डालें तो स्थितियां एक के बाद एक बदतर ही मिलेंगी। जहां सामान्य बीए करने के लिए केंद्रीय विश्वविद्यालयों में हजारों में फीस है वहीं निजी कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में लाख के पार फीस चली जाती है। ऐसे में जो समर्थ अभिभावक हैं वो तो अपने बच्चों को तथाकथित गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान कर पाते हैं बाकी सब इत्यादि में शामिल हो जाते हैं।

नब्बे के आस-पास ही तदर्थ और अतिथि शिक्षकों के द्वारा प्राथमिक उच्च प्राथमिक आदि स्कूलों में सेवाएं लेने की शुरुआत हुई। यह एक तय समय सीमा के लिए विकल्प सुझाए गए थे। लेकिन हमने तो विकल्प को ही प्रमुख मान लिया। आज की तारीख में कोई राज्य छूटा नहीं है जहां तदर्थ और अतिथि शिक्षक नहीं हैं। इन अतिथि शिक्षकों को हर साल नौ या दस माह के लिए अनुबंध में रखा जाता है और अगले साल इनकी सेवाएं जारी रहेंगी या नहीं इसके प्रति कोई तय नियम या आश्वासन नहीं होता। इस प्रकार अतिथि एवं तदर्थ शिक्षक सालों साल यानी दस पंद्रह साल तक खट रहे हैं। वह प्राथमिक स्कूलों से लेकर कॉलेज और विश्वविद्यालय आदि सब जगह हैं। अकेले दिल्ली में तकरीबन 22,000 अतिथि शिक्षक हैं। इन अतिथि और तदर्थ शिक्षकों की दशा और दिशा सुधारने के प्रति कोई भी सरकार गंभीर और सार्थक कदम उठाने से बचती रही है। यह असल विमर्श का मुद्दा है कि चुनावी माहौल में इन्हें वोट बैंक ज़रूर दिखाई देते हैं इसलिए इन्हें स्थाई करने का चबेना ज़रूर बांटा जाता है।

न केवल एक राज्य में बल्कि हर राज्य से सूचनाएं आ रही हैं कि कितने सरकारी स्कूल या तो बंद कर दिए गए या फिर वर्तमान स्कूलों के दूसरे स्कूलों में विलय कर दिये गये। दिल्ली की ही बात करें तो अप्रैल में पूर्वी दिल्ली नगर निगम के तकरीबन पंद्रह स्कूलों को विलयन से गुजरना पड़ा। वहीं पिछले साल अक्टूबर में दिल्ली में दस सरकारी स्कूल बंद कर दिए गए। सरकारी स्कूलों को बचाने एवं मर्ज करने से बचाने के लिए किसी भी राजनीतिक दलों व सरकारों ने कोई ठोस कदम नहीं उठाए। मर्जिंग और बंद होते सरकारी स्कूलों को कैसे बचाया जाए इस बाबत कोई योजना न तो लाई गई और न नीति निर्माता धड़ों में इसके प्रति कोई सुगबुगाहट नजर आती है। विभिन्न नागर समाज बंद होते सरकारी स्कूलों को बचाने और मर्ज होते स्कूलों को कैसे अस्तित्व में रख सकें इसके लिए आवाज उठा रही हैं। एक अलग विमर्श का मुद्दा है कि सरकारें इसे जिस हल्के तरीके से ले रही हैं इससे एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि उनकी इच्छा शक्ति इन स्कूलों को बचाने से ज्यादा बंद करने की है। उस पर तर्रा तर्क यह दिया जाता

है कि बच्चे नहीं हैं। शिक्षकों की कमी है आदि आदि। वर्तमान स्कूलों को गिरा या बंद कर वहां पर पार्किंग की व्यवस्था की जा रही है। इन तर्कों पर नागर समाज सचेत है।

राजनीतिक दलों को कायदे से शिक्षा की व्यवस्था और दिशा निर्माण के लिए ठोस योजना बनाने और उन्हें लागू करने की रणनीति की आवश्यकता है। वरना सरकारें चुनी जाएंगी सत्ता में रहेंगी भी और पांच वर्ष पूरा कर चली भी जाएंगी। शिक्षा ही है जो सरकारों के बनने और जाने से न तो आती है और न जाती है बल्कि शिक्षा हमेशा रहती है। यदि हमने शिक्षा को अपनी चिंता के केंद्र में नहीं रखा तो शायद हमें नहीं मालूम कि हम अपने भविष्य के साथ कैसे बर्ताव कर रहे हैं।

राजनैतिक-ऐतिहासिक शैक्षिक घोषणाओं की यात्राएं कई बार हमारी समझ और काल-बोध को स्पष्ट करती हैं। शैक्षणिक ऐतिहासिक घोषणाओं में 1990 का जोमेटियन का एजूकेशनल फॉर ऑल, ईएफए, 2000 का डकार घोषणा पत्र, 2000 का सहस्राब्दि विकास लक्ष्य, 2009 का शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2015 जब हमने सहस्राब्दि विकास लक्ष्य पूरा नहीं कर पाए और नागर समाज ने तय किया कि सतत् विकास लक्ष्य 2030 तक हम शिक्षा में गुणवत्ता, समानता और लैंगिक समतामूलक परिवेश मुहैया करा पाएंगे। उक्त घोषणाएं राजनैतिक ज्यादा थीं शैक्षिक कम। क्योंकि शिक्षा में जो लक्ष्य हासिल करने के लिए समय सीमा तक की गई थी वह हर बार अधूरी और अछूती रह गई। इसके पीछे राजनैतिक इच्छा शक्ति की कमी और रणनीति एवं योजना के स्तर पर कमियों देखी जा सकती हैं। वरना वैश्विक स्तर पर स्वीकृत घोषणाएं क्यों विफल हो गईं। क्यों आज भी भारत में करोड़ों बच्चे बुनियादी शिक्षा से महरूम हैं? क्यों भारत के बच्चे स्कूलों से बाहर हैं? कहां तो हम शिक्षा में समानता, समतामूलक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने की बातें करते हैं किन्तु वहीं हक़ीकत यह है कि हमारे लाखों बच्चे अभी भी स्कूलों तक पहुंच नहीं पाए हैं। जो बच्चे स्कूलों में हैं उन्हें ऐसी शिक्षा क्यों नहीं दे पा रहे हैं कि वे भाषा, गणित आदि विषय की बुनियादी दक्षता ग्रहण कर पाएं। तमाम सरकारी और गैर सरकारी रिपोर्ट हमें लगातार आईना दिखाती हैं कि बच्चे अपनी कक्षा के अनुरूप पढ़ने-लिखने आदि में पीछे हैं। यदि हमें सतत् विकास लक्ष्य 2030 के लक्ष्य को हासिल करने हैं तो राजनैतिक और नागर समाज की प्रतिबद्धता की आवश्यकता पड़ेगी। हमें पूरी इच्छा शक्ति और कार्ययोजना के साथ प्रबंधन की समझ का इस्तमाल करना होगा।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 25, अंक 3, दिसंबर 2018

चिंतक और चिंतन

महामना पंडित मदनमोहन मालवीय का शिक्षा दर्शन

सुनीता सिंह*

सारांश

भारतीय इतिहास में अनेक प्रगतिशील समाज-सुधारक हुये है, जिनके अथक सामाजिक कल्याण के प्रयास ने समाज को सही दिशा प्रदान की है, इनमें राजाराम मोहन राय, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गाँधी जी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। ये सभी समाज सुधारक, महान शिक्षाविद् भी थे। इन शिक्षाविदों ने औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली का विरोध करते हुए भारतीय संस्कृति एवं शिक्षा को सतत् प्रगतिशील बनाये रखने का प्रयास किया। तत्कालीन शिक्षा विदों की श्रृखॅला में महामना पं. मदन माहेन मालवीय जी वे श्रेष्ठ शिक्षाविद् हैं, जिनको राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने भारत भूषण कहा तथा स्वयं को उनका पुजारी बताया। इसी क्रम में प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर प्रफुल्ल चन्द्र राय का विचार है कि, ''गाँधी जी के बाद कोई दूसरा व्यक्ति मिलना कठिन है, जिसने इतना अत्यधिक त्याग किया हो और बहुमुखी कार्यो का ऐसा प्रमाण प्रस्तुत किया जैसा मालवीय जी ने प्रस्तुत किया।'' मालवीय जी ने जीवन रंग मंच पर ओजस्वी, वक्ता, प्रदीप्त पत्रकार, प्रभावशाली अधिवक्ता, विधिज्ञाता, कुशल शिक्षक, पत्रकार, सफल राजनेता, कथावाचक, महान शिक्षाविद, दार्शनिक, साहित्यकार व अनन्य राष्ट्रभक्त की भूमिका का निर्वहन किया। उनकी वेश भूषा - श्वेत वस्त्र, रेश्मी अंगौछा, माथे पर चन्दन का टीका, खान-पान, आचार - विचार, विहार सभी विशुद्ध भारतीय

* सहायक आचार्य, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

थें, परन्तु यदि शिक्षा व समाज के सन्दर्भ में उनके विचारों को विश्लेषित किया जाये तो वे एक प्रगतिशील, आधुनिक, व्यावहारिक राष्ट्रवादी विचारक के रूप में दृष्टिगत होते हैं। महामना का जीवन व चिन्तन बहुआयामी था। उनके शैक्षिक विचारों में आर्दशवाद, वस्तुवाद, प्रयोगवाद, मानवतावाद एवं सनातन परम्परा का समन्वय देखने को मिलता है।

प्रस्तुत आलेख में महामना पं. मदन मोहन मालवीय जी के शिक्षा दर्शन व वर्तमान शैक्षिक परिस्थिति में उसकी प्रासंगिकता को जानने का प्रयास किया गया है।

मालवीय जी का संक्षिप्त जीवन परिचय

महामना पं. मदन मोहन मलवीय जी का जन्म प्रयाग के प्रतिष्ठित कुलीन ब्राहमण परिवार में 25 दिसम्बर सन् 1861 में पौष कृष्ण, अष्ठमी बुधवार को हुआ। उनके पिता पं. ब्रजनाथ संस्कृत के श्रेष्ठ विद्वान कथा वाचक एवं माता मूना देवी, कृष्ण भक्त व सनातनी परम्परा की वाहक थीं। बचपन में उन्हें मस्ता नाम से पुकारा जाता। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा पं. हरिदेव जी की ''धर्मजनापदेश पाठशाला'' से हुई। जहाँ उन्होने भगवद् गीता के श्लोकों का वाचन करना सीखा। मालवीय जी ने आठ वर्ष में यज्ञोपवीत संस्कार व गायत्री मंत्र की दीक्षा प्राप्त की। हाई स्कूल की परीक्षा सन् 1877 में अंग्रेजी माध्यम के सरकारी विद्यालय से द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की। 1878 में इनका विवाह मीरजापुर के पण्डित नन्दराम की कन्या कुन्दन देवी से हुआ। म्योर सेन्ट्रल कालेज से इण्टरमीडिएट एवं बी.ए. की परीक्षा 1884 में पास की। बी.ए. पास होने के बाद यद्यपि वे कथा वाचक बनना चाहते थे, परन्तु घर की आर्थिक स्थिति के चलते 1885 से 1887 के बीच चालीस रूपये मासिक आय पर अध्यापकवृत्ति अपनायी। 1886 में महामना ने कांग्रेस के द्वित्तीय महाधिवेशन (कलकत्ता) में उनके व्याख्यान से प्रभावित होकर राजा राम पाल सिंह (कालाकाँकर प्रतापगढ़) ने उनको 200 रू. प्रतिमाह पर हिन्दुस्तान के सम्पादकीय कार्य पद हेतु आमंत्रित किया। यही से मालवीय जी का पत्रकारी जीवन प्रारम्भ हुआ। जून 1889 में राजा साहब के सुरापान कर, मिलने के लिए बुलाने के कारण उन्होने सम्पादन कार्य छोड़ दिया। तद्पोरान्त इन्डियन यूनियन का संपादन किया। राजा साहब के वित्तीय प्रोत्साहन स्वरूप उन्होंने एल.एल.बी. की परीक्षा द्वितीय श्रेणी में कलकत्ता विश्वविद्यालय से 1891 में उर्त्तीण की। 1892–1893 में डिस्ट्रिक्ट कोर्ट व फिर हाईकोर्ट में वकालत की। महामना को हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान से अगाध प्रेम था।

वह हिन्दी भाषा के पुर्नरूत्थान के लिये युवा काल से ही प्रयासरत थे। सन् 1884 में हिन्दी उद्धारिणी प्रतिनिधि सभा का गठन किया जो 1893 में ''काशी नागरी प्रचारिणी सभा'' बनी। इसके संरक्षक मालवीय जी थे जिन्होंने युक्त प्रांत के सरकारी काम-काज, स्कूलों, न्यायालयों में हिन्दी भाषा के उपयोग के लिये आन्दोलन का निर्णय लिया। 1893-1898 में उन्होंने अदालतों में देवनागरी लिपि का प्रयोग हेतु संघर्ष किया व सफलता प्राप्त की। तदोपरान्त 1898 में मैक्डानल ने हिन्दी भाषा का अदालतों में प्रयोग किया जाये, का आदेश जारी किया।

1901 में प्रयाग म्युनिसपैलिटी के वाइस चेयरमैन, 1903 में प्रान्तीयकौन्सिल के सदस्य चुने गये। समकालीन समय मे भारतीय समाज में नव राष्ट्रवाद पनप चुका था, जो स्वदेशी, राष्ट्रीय शिक्षा, मॉडल व विदेशी शिक्षा के वहिष्कार से प्रेरित था। महामना भी इसमें प्रेरणा स्वरूप थे। अतः भारतीय उद्योग धन्धों को पुनः जीवन्त करने हेतु उन्होने औद्योगिक संघ की स्थापना की। वकालती कार्य से पूर्णयता मन हटाकर उन्होंने 1904 में राष्ट्रीय शिक्षा मॉडल पर आधारित विश्वविद्यालय के निर्माण की योजना तैयार की। 1905 कांग्रेस अधिवेशन (बनारस) में इसकी योजना की घोषणा की। सनातन धर्म महासभा के अधिवेशन में इसका प्रस्ताव पारित किया। 1907 के सूरत कांग्रेस अधिवेशन में महामना ने कहा कि ''भारत की दरिद्रता का बहुत बड़ा कारण स्वदेशी की उपेक्षा है'' 1907 में बसंत पंचमी पर उन्होंने '**अभ्युदय**' हिन्दी सप्ताहिक पत्र व 24 नवम्बर 1909 को अंग्रेजी समाचार पत्र '**लीडर**' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। 1910 में सनातन धर्म महासभा में भाग लेने के साथ विश्वविद्यालय निर्माण की क्रिया में तेजी आयी यद्यपि मालवीय जी कई बार विश्वविद्यालय योजना को लेकर उपहासित किये गये, जैसे गोखले जी ने ''हैव यू विकम मैड'' कहा तो मोतीलाल जी ने कहा ''तुम्हारा दिमाग तो ठीक है? परन्तु अपनी दृढ़ इच्छा शक्ति व अपनी वाकचार्तुयता से इस जटिल कार्य को उन्होंने व्यावहारिक रूप दिया। ऐनी बेसेन्ट जी ने सेन्ट्रल हिन्दू कालेज (1896) व 50 हजार रुपये का चैक देकर मालवीय जी का सहयोग दिया। 4 फरवरी 1916 को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। विश्वविद्यालय निर्माण के साथ ही साथ महामना राजनैतिक गतिविधियों में भी हमेशा सक्रिय रहे। 1910 में उन्होंने रौलेट एक्ट विरोध, जलियाँवाला बाग हत्या काण्ड की रिपोर्ट तैयार की। इण्डियन इन्डस्ट्रियल कमेटी के सदस्य रहते हुये मिनट्स ऑफ डिसेन्ट तैयार किया। 1919 में इण्डेमिटी बिल पर लगातार पाँच घण्टे तक भाषण दिया। 1922 में चौरीचौरा काण्ड के 150 व्यक्तियों को

फाँसी से बचाते हुये पुनः उत्कृष्ट वकालती कार्य का प्रदर्शन किया। वे 1909, 1918, 1932, 1933 में कांग्रेस सभापति रहे। 1919 से 1939 तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति रहे, तत्पश्चात् आजीवन रेक्टर पद पर रहकर विश्वविद्यालय की सेवा की।

महामना का महाप्रयाण 12 नवम्बर सन् 1946 को हुआ। उनके विचार एवं सिद्धांत आज भी सम्पूर्ण राष्ट्र का मार्गदर्शन कर रहे है। उन्होंने एक त्यागी, राष्ट्र भक्त के रूप में अपने जीवन को निम्न श्लोक की पक्तियों पर आधारित किया ।

''न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्ग ना पुनर्भवम्'।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिना मार्ति नाशतय्।।
केडनु य स्यादु पायोडन येनाहं दुःखितात्मनाम्'।
अन्त प्रविश्य भूतानां भवेयं दुःख भाव् सदा।।''

महामना मालवीय जी का शिक्षा मॉडल

महामना मालवीय जी का शिक्षा का मॉडल ''सा विद्या या विमुक्त्ये'' पर आधारित है। उनके दृष्टिकोण में स्वार्थ परायणता, संकीर्णताओं के स्थान पर सत्य त्याग, समर्पण की भावना का विकास करना ही मुक्ति है। वे ऐसी शिक्षा व्यवस्था के पक्षधर थे जो विद्यार्थियों की सामाजिक, मानसिक, भावनात्मक शक्तियों को पुष्ट करें। महामना की उच्च शिक्षा की संकल्पना का आधार भारतीय शिक्षा के प्राचीन गौरव शाली केन्द्र तक्षशिला व नालन्दा विश्वविद्यालय थे। जिसमें वे पश्चिमी विश्वविद्यालय की वैज्ञानिक प्रणाली का समन्वय चाहते थे। इस प्रकार उनके शैक्षिक दृष्टि कोण में प्राच्य व पाश्चात्य, धर्म, विज्ञान व मानविकी का समन्वय था। उनके मानवता वादी दृष्टि कोण में लोक कल्याण व लोक संग्रह का भाव था। शिक्षा के प्रति उनका विचार प्रयोगवादी, वैज्ञानिक व प्रगतिशील था। महान शिक्षाविद डा. सर्वपप्ल्ली राधाकृष्णन ने उनके बारे में कहा कि, ''पं. मदन मोहन मालवीय पाच हजार वर्ष पूर्व के अतीत भारत का अनुकरण नहीं करना चाहते थे, वे युग की प्रगतिशील धड़कन व विज्ञान के संदेश से देशवासियों को समृद्ध कर उन्हें मानव सेवा के लिए प्रेरित करना चाहते थे। वे अपने अतीत के मूल्यवान ज्ञान सम्पदा को सुरक्षित कर, के युग के साथ चलना चाहते थे''। उनकी शैक्षिक परिकल्पना ''आ नो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वतः'' पर आधारित थी। अतः उन्होंने विश्व की सभी दिशाओं से आने वाले श्रेष्ठ विचारों का समन्वय कर विश्वविद्यालय का द्वितीय ध्येय कला और विज्ञान की सर्वतोन्मुखी शिक्षा व अन्वेषण में वृद्धि करना रखा। उनके शैक्षिक मॉडल व चिन्तन पक्ष को इस प्रकार रेखांकित किया जा सकता है।

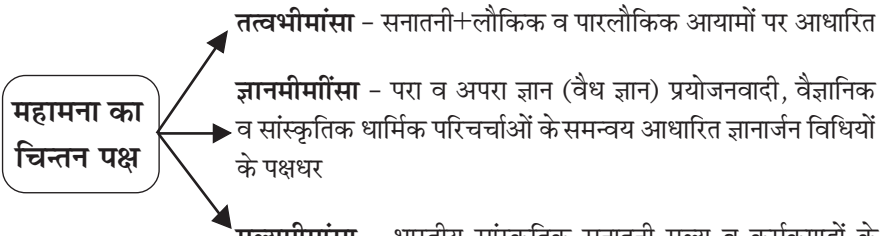

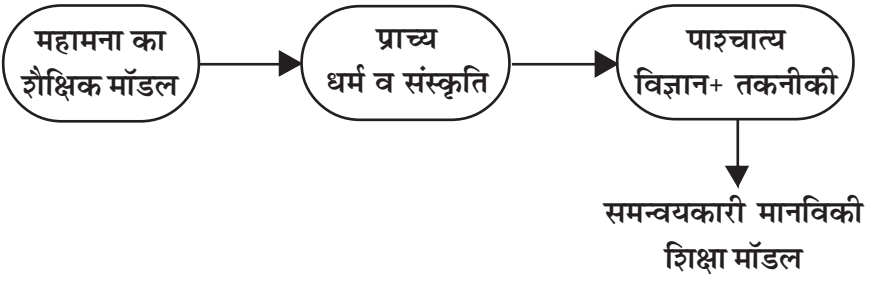

प्रयोजनवादी चिन्तकों की भाँति महामना शिक्षा के द्वारा छात्रों में सामाजिक परिस्थितियों से संघर्ष करने की शक्ति उद्दीप्त करना चाहते थे। उनकी शैक्षिक अवधारणा अर्थकारी थी। हाई स्कूल के बाद से ही वे शिक्षा को अर्थ परक क्रियाआधारित, व्यावसायिक प्रशिक्षणों से पूर्ण बनाना चाहते थे। छात्रों में उत्पादन और आपूर्ति की व्यवस्था द्वारा आत्मबल को विकसित कर उनको स्वावलम्बी बनाना उनका उद्देश्य था। उनका मानना था कि भारत वर्ष की उन्नति मे सबसे बड़ा रोड़ा शिक्षा का अभाव है। इसकी अभिव्यक्ति उनके द्वारा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में की गयी। उन्होंने कहा, ''हे शिक्षा प्रेमियों मेरे हाथ में पर्याप्त धन देकर, देश की शिक्षा का भार दे, और मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि कुछ ही वर्षो में इस भूमि से अशिक्षा को हटाकर अपने नवयुवकों में उच्च नागरिकता, प्रेम भाव का ऐसा विस्तार करुँगा कि राष्ट्रीयता का सूर्य उदय होगा।'' (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय दीक्षांत भाषण (1929)

मालवीय जी की दृष्टि में वास्तविक शिक्षा वही है, जो देश भक्त पुरूष व स्त्रियों की जाति पैदा करे जो राष्ट्रीय हित के सामने जातीय स्वार्थ और द्वेष से ऊपर उठकर कार्य करे उनके विचार में शिक्षित नागरिक का सर्व श्रेष्ठ कर्तव्य मातृभूमि के सम्मान की रक्षा करना है। इसी भाव को व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा कि, ''यदि शिक्षा के द्वारा मैं आपके

हृदय में देश को स्वतंत्र व स्वशासित देख लेने की इच्छा का संचार न कर सका तो ये शिक्षा व्यर्थ हो जायेगी।'' इस प्रकार वे शिक्षा के द्वारा युवाओं में लोकतांत्रिक नेतृत्व, सहयोग, सत्य, त्याग के भाव को पोषित करना चाहते थे।

उनके दृष्टिकोण में समाज के लिए शिक्षा का भूमण्डलीकरण, भोगोन्मुखता, बाजारीकरण, निजीकरण, अल्पांश में उपयोगी है। ये भविष्य में भ्रष्टाचार रूपी विनाशक तत्व के रूप में सामने आयेगा। वर्तमान समाज में शिक्षा के व्यवसायीकरण से यह दृष्टिगत भी हो रहा है।

शिक्षा के उद्देश्य

महामना के अनुसार शिक्षा के वैयक्तिक उद्देश्यों के अर्न्तगत व्यक्ति का शारीरिक विकास मानसिक विकास, चरित्र निर्माण, जीविकोपार्जन की क्षमता का विकास, नैतिक व धार्मिक आचरण का विकास कर व्यक्ति के सभी पक्षों का संतुलित विकास करना है। जबकि शिक्षा के सामजिक उदेश्यों के अर्न्तगत देशभक्ति, आत्मत्याग, सेवाभाव आदि को व्यक्ति के अन्दर उत्पन्न करना है। इन उद्देश्यों के सन्दर्भ में महामना का विचार इस प्रकार है।

चरित्र निर्माण

गाँधी जी की भाँति महामना ने चरित्र निर्माण को शिक्षा का प्रमुख ध्येय माना। वे कहते हैं कि, ''केवल व्यावसायिक उन्नति से ही देश की जनता सुख समृद्धि सुरक्षित नहीं कर सकती आचार की उन्नति आर्थिक उन्नति से कही अधिक महत्व रखती है।'' उनका मानना था कि व्यक्तित्व निर्माण में चरित्र का महत्वपूर्ण योगदान होता है। उनके अनुसार, ''जिस व्यक्ति का चरित्र ठीक नहीं होता है, उसका व्यक्तित्व भी आकर्षक नहीं होता''। वे बल देते हुए कहते है, कि ''यदि प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक राष्ट्र केवल चरित्र का विकास कर ले तो संसार की समस्याओं का निराकरण स्वयं सम्भव है।''

सज्जनता विहीन ज्ञान उनकी दृष्टि में निरर्थक था। उनकी दृष्टि मे, ''पारस्परिक सद्भाव तथा सहयोग के बिना व्यावसायिक उन्नति सम्भव नहीं हो सकती और जीवन में सद्भाव व सहयोग को विकसित करने के लिए चरित्र गठन आवश्यक है।'' महामना सदाचार को मनुष्य का परम धर्म मानते थे। उन्होंने आचरण की शुद्धि, पुष्टि, परिपक्वता के लिये विश्वविद्यालय का प्रमुख ध्येय, ''धर्म और नीति को शिक्षा का आवश्यक व अभिन्न अंग मानकर युवकों में सदाचार का संगठन व चरित्र निर्माण का विकास करना निर्धारित किया।''

महामना का मानना था कि यदि व्यक्ति का हृदय पवित्र न हो और वह अपनी प्रवृत्तियों पर नियंत्रण न रख सके तो पूर्ण रूप से शिक्षित कहलाने का अधिकारी नहीं है। वे आत्मअनुशासन को सर्वोपरि मानते थे। आत्माअवलोकन के विकास हेतु नैमित्तिक कर्मकाण्ड पर आस्था प्रकट की, वे नित्य प्रातः व सन्ध्या उपासना, व्रत, उपवास, प्रायश्चित पर बल देते थे। वे कहते थे कि, ''चरित्र का निर्माण न तो कोई प्राचार्य कर सकता है और न ही अध्यापक और न ही पुस्तको के पढ़ने से होता है। चरित्र का निर्माण व्यक्ति स्वयं करता है, और यह पवित्रता के भाव से उत्पन्न होता है। चरित्र निर्माण के लिए त्याग, तपस्या, धैर्य, संयम की आवश्यकता होती है (चर्तुवेदी खण्ड 2–1936)।'' वे मनुष्य की पवित्रता को चरित्र के रूप में देखते थे। उन्होंने 14 वर्ष की अवस्था में अश्लील साहित्य का विरोध करते हुए लिखा–

''यह रस ऐसो बुरो, मत को देत बिगारि।
याते पास न आवहु, जेते अहौ अनारि।।''

उपरोक्त दोहा आज भी प्रासंगिक है जबकि समाज के प्रत्येक पटल इलैक्ट्रानिक मीडिया एवं प्रिन्ट मीडिया वैज्ञानिक तकनीक एवं सामाजिक साहित्यिक पत्रिकाओं इत्यादि में ये दृश्य, खबरें महिमा मण्डित की जाती है। मालवीय जी की चरित्र निर्माण अवधारणा आत्मपरक व धार्मिक सिद्धान्तों पर आधारित थी।

नैतिक व धार्मिक शिक्षा के विकास का उद्देश्य

महामना संस्कृत एवं धार्मिकता के अनुयायी थे। धर्म उनका प्राण था। वे कहते थे, ''धर्म रक्षति रक्षितः।'' उनका मानना था ''यदि धर्म को उचित रूप में समझाया गया, तो निश्चय ही मनुष्यों में आनन्द और एकता का प्रसार होगा। धर्म के प्रति निष्ठावान व्यक्ति अपने शासक, भगवान व देश के प्रति निष्ठावान होता है। धर्म के प्रभाव से मानवीय भावना उत्पन्न होती है'' (गुप्ता, 1978)। महामना धार्मिक शिक्षा विरोधी लोगों से असहमत थे। वे आत्मा के प्रशिक्षण को मस्तिष्क व शरीर के प्रशिक्षण से कम नहीं मानते तथा आत्मा प्रशिक्षण हेतु धार्मिक शिक्षा पर बल देते थे।

महामना सत्य को मुख्य धर्म मानते हुए कहते ''सत्यन्नास्ति परोधर्मः'' (दार एण्ड सोमस्कन्दन 1966)। वे नैतिकता को धर्म के अभिन्न अंग के रूप में स्वीकारते थे। उनके मतानुसार धार्मिक शिक्षा सीखने की नहीं जीवन शैली में उतारने का विषय है। वे चौबीस घण्टे धर्ममय रहने की सलाह देते थे। महामना गो, गंगा व गायत्री के उपासक लक्षण थे।

उन्होंने धर्म के दस लक्षणों के अनुकरण करने पर बल दिया।

''धृति क्षमा दमों, स्तेंय शौच मिन्द्रिय निग्रह।
धी विद्या सत्यम, क्रोधो दशक धर्म लक्षणम्।।''

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना के अवसर पर उन्होंने धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा कि, ''प्राचीन समय में हिन्दू समाज एक उच्च तथा सुन्दर नींव पर खड़ा था, आज हिन्दू समाज के ह्रास का प्रमुख कारण समाज को धारण करने वाली शक्ति धर्म के पालन में शिथिलता है (वर्मा 1972)।'' वे शास्त्र विहित विधियों के अन्धवत् अनुसरण का विरोध करते थे। वे मानते थे कि इन्हीं कारणों से धर्म की लोकसंग्रहकारी शक्ति उत्पन्न नहीं हो पा रही है। (अभ्युदय 01 मई 1980)

उपरोक्त उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु उन्होंने विश्वविद्यालय का प्रथम ध्येय हिन्दू शास्त्र तथा संस्कृत भाषा अध्ययन में वृद्धि रखा, जिससे हिन्दुओं की प्राचीन संस्कृति व भावनाओं की रक्षा व प्रचार हो सके। महामना के समय में विश्वविद्यालय में स्नातक (बी.ए. और बी.एससी.) कक्षा तक नियमित रूप से धर्म विषयक पढ़ाई की व्यवस्था थी। धर्म शिक्षा विभाग, द्वारा धर्म दीपिका नामक पुस्तक प्रकाशित होती थी। प्रमुख तिथियों एकादशी, पूर्णिमा, रविवार को भागवत एवं गीतावाचन होता था। महामना स्वयं कथा वाचन करते थे। वे धार्मिक शिक्षा के द्वारा छात्रों में यह भाव उत्पन्न करना चाहते थे, कि भारतीय संस्कृति में अर्थोपार्जन कर केवल कामोपभोग करना ही जीवन का लक्ष्य नहीं है। वे भारतीय युवाओं को त्रिवर्ग ''धर्मार्थ काम'' का उपासक बनाना चाहते थे। उनके बाद कुलपति डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णनन् जी द्वारा गीता प्रवचन किया जाता था।

वर्तमान समाज में जबकि मूल्यों का अवनमन त्वरित गति से हो रहा है। समाज विभिन्न बुराइयों, भ्रष्टाचार, जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद, चोरी, बलात्कार, शोषण, आदि से ग्रसित है। संकुचित साम्प्रदायिक भावनायें युवाओं को लक्ष्य से पथ भ्रष्ट कर रही है। धार्मिक जड़ता राजनैतिक क्षेत्रों में पैर पसार रही है। ऐसे मे महामना का समत्व और निष्काम लोक सेवा पर आश्रित कर्मयोग एवं ''आत्मवत् सर्वभूतेषु हिते रत:'' का सनातन भाव ही उपरोक्त समस्याओं को हल करने के लिये श्रेयस्कर होगा।

कला कौशल एवं व्यावसायिक शिक्षा का उद्देश्य:-

महामना के प्रगतिशील व्यक्तित्व ने यह आकलन कर लिया था कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी के लाभ को समाज तक पहुचाने के लिए विज्ञान व आध्यत्मिकता का मेल आवश्यक है। अत: उन्होंने आध्यत्मिकता की आन्तरिक मजबूती के आधार पर विकास

का मॉडल तैयार किया। उनके द्वारा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का तीसरा ध्येय, छात्रों को आवश्यक प्रयोगात्मक ज्ञान के साथ विज्ञान शिल्प, कला कौशल तथा व्यवसाय सम्बन्धी ऐसी शिक्षा देना निर्धारित किया गया जिससे देशी व्यवसाय व धन्धों की उन्नति हो सके।

1916 में ब्रिटिश सरकार द्वारा निर्धारित भारतीय औद्यौगिक आयोग के तीन भारतीय सदस्यो में मालवीय जी एक प्रमुख सदस्य थे। इस कमीशन की रिपोर्ट पर असहमति लेख में महामना ने आर्थिक विकास हेतु उद्योगों, प्रौद्यौगिक शिक्षा को प्रोत्साहित करने की बात की। महामना द्वारा बहु शिल्प शिक्षण संस्था, राजकीय इन्जीनियरिंग कालेजों की स्थापना, यन्त्र कला विदों की शिक्षा व्यवस्था, रेलवे, व्यापार, उद्योग, कृषि आदि पक्षों पर गम्भीर तथ्यात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया। जो आज भी प्रासंगिक है। व्यावसायिक शिक्षा के परिपेक्ष्य में उन्होने कहा, ''हमारे नवयुवकों में कुछ लोग प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं, किन्तु शिल्प में बिल्कुल शून्य हैं। इसके लिए सरकार को प्रत्येक नगर में शिल्प स्कूल, कालेज व राजधानियों में विश्वविद्यालय स्थापित करना चाहिए'' (भारतीय औद्योगिक कमीशन रिपोर्ट पर असहमति लेख) महामना में ब्रिटिश सरकार की कार्यवाही में विलम्ब देखते हुए विश्वविद्यालय में 1919 में इन्जीनियरिंग कालेज, 1923 में कालेज ऑफ माइनिंग एण्ड मेटलर्जी, इन्जीनियरिंग कार्यशालओं की स्थापना की। वे चाहते थे कि छात्र प्रातः काल कारखानों में व संध्याकाल विश्वविद्यालय के पठन-पाठन में बितायें। वे मानते थे कि यंत्र कला विदों, इंजीनियरों का देश के उत्थान में बड़ा योगदान है।

व्यावसायिक शिक्षा के विकास हेतु उन्होंने सुव्यवस्थित व्यवसायिक बैंको की स्थापना, भारतीयों को बैंक संबंधी शिक्षा, प्रान्तीय राजकीय औद्योगिक विभागों की स्थापना, इम्पीरियल, पॉलीटेक्नीक इन्स्टीट्यूट की स्थापना, वैज्ञानिक पदों पर भारतीयो की नियुक्ति सम्बन्धी विचार ब्रिटिश सरकार के सामने रखते हुए भारतीय उद्योग धन्धों के भारतीयकरण पर बल दिया। उन्होने कहा कि, ''भारतीय उद्योगों के मामले में भारत का हित ही पहला, द्वितीय व तृतीय ध्येय होना चाहिए।'' वे चाहते थे कि भारतीय कच्चे माल का उपयोग भारत में भारत के लोगो द्वारा भारतीयों के हित के लिए हो। इस प्रकार महामना की दूर दृष्टि भविष्यगत परिणामों को देख रही थी। वे शिक्षा की व्यावसायिक पूर्ति द्वारा देश को बेरोजगारी गरीबी, अशिक्षा से मुक्त कराना चाहते थे। वे भारतीय कुटीर धंधों की पुर्नस्थापना चाहते थे। वे कहते थे कि ''भारत के आर्थिक उन्नति का कृषि व्यवसाय में गहरा सम्बन्ध है और यह उन्नति तभी सम्भव है जब भारत अपने औद्यौगिक

विकास के कुटीर उद्योगों को पुनः स्थापित करें, जिससे कृषि व्यवसाय भी पुर्नजीवित हों (प्रोसीडिंग, इण्डियन लेजिस्लेटिव कौंसिल सन् 1915)।'' कृषि विकास हेतु वे युवाओं को कृषि कार्यों में शिक्षित करने, उन्हें आर्थिक वित्तीय सहायता, ईधन व खाद्य संचयों के निर्माण से सम्बन्धित प्रशिक्षण दिये जाने के पक्षधर थे।

इस प्रकार व्यावसायिक शिक्षा के विकास द्वारा आर्थिक आत्मनिर्भरता का स्वप्न जो महामना ने देखा था, वह वर्तमान परिस्थिति में भी प्रासंगिक व अनिवार्य जान पड़ता है।

शारीरिक पुष्टता का उद्देश्य

04 सितम्बर 1935 को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के शिवाजी हाल में महामना ने छात्रों को सम्बोधित करते हुए कहा कि ''छात्रों का प्रथम कर्तव्य व्यायाम कर के शरीर को दृढ़ बनाना है। पहले वे अपना स्वास्थ सुधारें, फिर विद्या पढ़ें, नित्य सवेरे शाम व्यायाम करें, खेलें, मैदान में विचरण करें, जल्दी भोजन करें, नियम से प्रभु का ध्यान करें, विद्वानों से उपदेश लें, अपनी रक्षा स्वयं करे व समय की पाबंदी रखें'' उन्होने छात्रों को उपदेश दिया।

''दूध पियो कसरत करो, नित्य जपो हरि नाम।
हिम्मत से कारज करो, पूरेंगे सब काम।।''

विश्वविद्यालय के विशाल क्रीड़ागन स्थल, छात्रावास के सामने के खेल के मैदान व्यायाम शालायें, शिक्षा विभाग सभी इंगित करते है कि स्वस्थ मानव शरीर की संकल्पना उनकी शिक्षा का प्रथम आधार थी। वे शारीरिक पुष्टता हेतु संतुलित आहार विहार, निद्रा को महत्व देते थे। शारीरिक बल हेतु वे छात्रों को ब्रह्मचर्य पालन का उपदेश देते। वे कहते थे, ''ब्रह्मचर्य पालन से आत्मबल बढ़ता है। जिसके द्वारा व्यक्ति संसार के कष्टो बाधाओं से मुक्त हो जाता है।''

यदि आज के छात्र, छात्रायें युवा छात्रजीवन में इस व्रत का पालन करें तो आधे से अधिक निश्चय ही समाज की समस्याओं का हल स्वंय ही हो जायेगा।

राष्ट्रीयता के विकास का उद्देश्य

महामना के अनुसार ''राष्ट्रीयता उस भाव का नाम है जो देश के सम्पूर्ण निवासियों के हृदय में देश हित की लालसा के साथ व्याप्त होती है। जिसके आगे अन्य भावों की श्रेणी गौण है। जिस देश के देशवासियों में प्रगाण देशभक्ति होती है, वहाँ पर मत भेद, वर्ण भेद व अन्य भेद फूट नहीं डाल सकते (मालवीय पद्मकांत 1962)।'' राष्ट्रीयता की ओर

लोगों का ध्यान आकृष्ट करते हुए उन्होने कहा कि ''राष्ट्रीयता ही जापान, इग्लैण्ड आदि देशों की उन्नति का कारण है।'' उनके विचार में ''प्रगाढ़ देश भक्ति से एकता उत्पन्न होती है और एकता से राष्ट्रीयता का भाव व राष्ट्रीयता के भाव से ही देश की उन्नति सम्भव है। उन्होंने धर्म से ऊपर राष्ट्र भक्ति को रखते हुए कहा कि जो धर्म के आगे राष्ट्र भक्ति को कुछ नहीं समझता उस पुरुष को समझ लीजिए कि वह धर्म तत्व को नहीं पहचानता'' महामना समता के आधार पर संयुक्त राष्ट्रीयता पर जोर देते थे। उनका मानना था कि ऐसा कोई हिन्दुस्तानी नहीं है चाहे वह हिन्दू, मुसलमान, पारसी हो, देशभक्त कहलाने का गौरव प्राप्त न हो, जो एक क्षण के लिये भी चाहे, कि उसका समुदाय दूसरे समुदायों पर श्रेष्ठता प्राप्त करें। देशभक्ति की माँग है कि हम अपने समस्त राष्ट्रवासियों का समाजिक रूप से हित चाहें। उनका विश्वास था, कि देशभक्ति का संचार हृदय से स्वार्थ के भाव को निकाल कर फेंक देता है। इसलिये वे भारतवासियों को संदेश देते हुए कहते, कि ''देश के यश में अपना यश, देश के जीवन में अपना जीवन, देश की मृत्यु में अपनी मृत्यु समझें।''

महामना ऐसी शिक्षा पद्धति के पक्षधर थे, जो राष्ट्र की समस्याओं, आदर्शो तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों में उत्पन्न हो। वे ऐसी शिक्षा के पक्षधर थे जो साम्प्रदायिक प्राथक्य को हटा कर देश भक्ति का संचार करे। उनकी राष्ट्रभक्ति को देखकर गाँधी जी ने कहा कि, ''मैं मालवीय जी से बड़ा देश भक्त किसी को नहीं मानता। जीवित भारतीयों में मुझे उनसे ज्यादा सेवा करने वाला कोई दिखाई नहीं देता।'' महामना का राष्ट्रप्रेम संर्कीणता से परे था। उनका विश्वास था कि शिक्षा ही वह साधन है जो जनतांत्रिक भावना को विकसित कर स्वतंत्र समाज का निर्माण कर सकती है। युवाओं में राष्ट्रीय एकीकरण, राष्ट्रीय हित की अभिवृद्धि, प्रगतिशील वैज्ञानिक लोकतांत्रिक आचारण का गठन, मानवतावादी दृष्टि कोण, सामाजिक कार्यो में रूचि उत्पन्न करना महामना की शिक्षा का मूल मंत्र था। उनका मानना था कि राष्ट्रीयता ही वह अमोध अस्त्र है जिसके आधार पर देश का निर्माण होता है। अत: 1929 में उन्होने कहा कि, ''आप स्वतंत्रता चाहते है स्वशासन चाहते है तो इसके लिये त्याग करने को तैयार हो जाइये। मातृभूमि के गौरव के लिये त्याग की भावना पुष्ट करें।''

अत: महामना पराधीन भारत में ही स्वतंत्र स्वशासित भारत की कल्पना करते हुये आर्थिक रूप से सम्पन्न, राष्ट्रीयता के भाव से पूर्ण, मानवता के प्रतीक युवाओं के तैयार करने के प्रति प्रतिबद्ध थे। शिक्षा को विकास का मूल मानते हुये उन्होंने कहा कि,''राष्ट्र

यदि सुशिक्षित है तो उसे अपने अधिकारों को ज्ञान रहता है। राष्ट्र के नागरिक यदि शिक्षित है, तो वे देश की उन्नति के लिये सम्भव प्रयास करेंगे। शिक्षित देश, शिक्षित समाज व शिक्षित व्यक्तिव अपने अधिकारो, कर्तव्यों को भली भाँति समझता है। इसलिये भारतवासियों को शिक्षित बनाना होगा।''

विकासशील भारत को विकसित देशों की श्रेणी में लाने के लिये उनका यह कथन आज भी प्रासंगिक है।

शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर महामना का दृष्टिकोण

महामना का शैक्षिक विचार प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च स्तरीय शिक्षा के सन्दर्भ में विचारणीय है। उनके शैक्षिक विचार को यदि गाँधी जी के शैक्षिक चिन्तन के साथ तुलनात्मक रूप से विश्लेषित किया जाये तो यह ज्ञात होता है, कि गाँधी जी प्राथमिक शिक्षा के सन्दर्भ में शिक्षा दार्शनिक और उच्च शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में समाज सुधारक थे। वहीं मालवीय जी की भूमिका प्राथमिक शिक्षा हेतु समाज सुधारक रूप में थी वहीं उच्च शिक्षा में उनका चिन्तन गहन श्रेष्ठ शिक्षा दार्शनिक जैसा दृष्टिगत होता है।

प्रारम्भिक स्तर पर महामना मातृ भाषा में शिक्षा देने के पक्षधर थे। उन्होने प्रारम्भिक स्तर पर उर्दू फारसी के प्रयोग के बाध्यता को अस्वीकार करते हुए वर्नाकुलर स्कूल खोलने की सिफारिश की। माध्यमिक स्तर पर उनका शैक्षिक विचार अर्थ उत्पादक, व्यावसायिक शिक्षा से प्रेरित था। माध्यमिक शिक्षा को वे विश्वविद्यालय शिक्षा का आधार मानते हुए कक्षा 6 से ही कला, धर्म, विज्ञान, प्रौद्योगिकी ज्ञानार्जन के साथ छात्रों को समाजोत्थान से भी जोड़ना चाहते थे। वे चाहते थे, माध्यमिक शिक्षा ऐसी हो जिसे प्राप्त कर विद्यार्थी किसी पेशे को अपना सकें व व्यावहारिक जीवन को प्रारम्भ कर सके। महामना माध्यमिक स्तर पर पाठ्येत्तर क्रियाओं के पक्षधर थे। वे माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में सामाजिक कार्यों, शारीरिक स्वस्थता सहयोग की भावना को पोषित करना चाहते थे। वे कहते थे कि-

''ग्रामे-ग्रामे सभा कार्या, ग्रामे-ग्रामे कथा शुभा।
पाठशाला, मल्लशाला, प्रतिवर्ष महोत्सवे।।
अनाथो विद्यवा रक्ष्या, मन्दिराणि तथा चगौ।
धर्म संगठन कृत्वा, प्राणिनां दु:ख नाशयते।।''

उच्च शिक्षा द्वारा युवाओं में मालवीय जी चेतना के पॉचों आयाम ज्ञान-विज्ञान, कला, दशर्न व आध्यात्मिकता को पोषित करना चाहते थे। वे विश्वविद्यालय में औद्योगिक

आत्मनिर्भता के प्रबल पक्षधर थे। इसका दृष्टांत डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णनन् के कथन से प्राप्त होता है। जिसे उन्होनें 25 दिसम्बर 1961 को विश्वविद्यालय के गोपुरम् के बाहर महामना की मूर्ति को अनावरित करते हुए दिया था ''कल मैं जमशेदपुर में था जहाँ मुझे बताया गया कि खनन, धातुकी, यांत्रिकी तथा विद्युत अभियात्रिंकी में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के लगभग तीन सौ प्राचीन छात्र कार्यरत थे। इस प्रकार निश्चय ही महामना ने जान लिया था कि देश की विपन्नता का कारण तकनीकी पिछड़ापन, सार्वजनिक सेवा भाव का अभाव तथा संस्कृति के प्रति उदासीनता है। महामना विश्वविद्यालय को बहु आयामी गतिविधियों का केन्द्र बना कर युवकों को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रशिक्षित करना चाहते थे जिससे युवा विज्ञान, कला, उद्योग और सामाजिक कल्याण के क्षेत्र में कीर्तिमान स्थापित करने में कुशल हो और भारत के विकास के लिए अपेक्षित ज्ञान व चरित्र से संयुक्त हो।''

वे कहते थे कि वर्तमान उच्च शिक्षा के उपर सबसे बड़ा अभियोग यह है कि ''बीस वर्ष विद्यालयों और विश्वविद्यालयों मे शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी एक नवयुवक अपने पत्नी, बच्चे व माता-पिता का भरण पोषण नहीं कर पाता। इस उच्च शिक्षा शिक्षण पद्धति में कहीं न कहीं त्रुटि है इसमें परिर्वतन आवश्यक है।'' (सुन्दर 1936) महामना का उपरोक्त वचन आज भी उच्च शिक्षा के सन्दर्भ में प्रासंगिक है।

विश्वविद्यालय के सन्दर्भ में उनका कहना था कि, ''प्रत्येक सभ्य देश में विश्वविद्यालय की शिक्षा राष्ट्रीय शिक्षा का प्रधान अंग मानी जाती है। यदि पाश्चात्य देशों द्वारा शिक्षा पर किये जाने वाले व्यय को हमारे विश्वविद्यालयी शिक्षा पर किये जाने वाले व्यय से तुलना की जाये तो यह ज्ञात हो जायेगा कि इस विषय में अन्य सभ्य देशों की अपेक्षा हम कितने पीछे हैं और हमें इस कमी की पूर्ति के लिये कितने उत्साह एवं प्रयास की आवश्यकता है।''

इस प्रकार उन्होंने शिक्षण संस्थानों को मनुष्य के वैयक्तिक, सामाजिक विकास का आधार माना। आज उच्च शिक्षा स्तर पर मानसिक प्रदूषण बढ़ रहा है। यद्यपि वैज्ञानिक अन्वेषण, प्रगति तो उत्तरोतर बढ़ रही है, परन्तु उच्च शिक्षित युवाओं में समझते हुये सही न सोच पाने की असमर्थता, नेत्र रहते हुये सही न देखपाने की विकलांगता, अदूरदर्शिता, निर्णय क्षमता का अभाव, तनाव, मानसिक द्वन्द जैसे पक्षाघात् बढ़ रहे है, जो उन्हें पतन की तरफ ले जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में महामना का समन्वयकारी राष्ट्रीय उच्च शिक्षा मॉडल प्रासंगिक है, ''जो मानसिक शक्तियों को विकसित करने के साथ ही भावनात्मक

अन्तः शक्तियों को भी उतनी तत्परता से विकसित करता है। वे उच्च शिक्षा को वैज्ञानिक, प्रयोगात्मक क्रिया आधारित, व्यावहारिक, यांत्रिकी की सुविधा से पूर्ण बना कर अनुसंधान परक बनाने के पक्षधर थे। उन्होंने विश्वविद्यालय का प्रमुख लक्ष्य चरित्र निर्माण माना। वे कहते थे कि विश्वविद्यालय का उद्देश्य केवल चिकित्सक, वैज्ञानिक, इन्जीनियर, व्यापारी व धर्मनिष्ठ बनाना ही नही वरन् उच्च कोटि के चरित्रवान, सत्य निष्ठ, ईमानदार युवाओं का निर्माण है। जो अपने पूर्ण जीवन व आचार से ये प्रमाणित कर सके कि इस महान विश्वविद्यालय के वे विद्यार्थी है।'' इस प्रकार वे उच्च शिक्षा के विभिन्न आयामों, चिकित्सा, प्रौद्योगिकी या अभियात्रिकी मूल आदि का आधार नैतिकता को मानते थे। वे मानते थे कि मानवीय स्वस्थ संवेदनायें और भावनायें ही विनाश, विध्वंस से समाज, देश, विश्व की रक्षा कर सकेंगी।

शिक्षा के विभिन्न कारकों के प्रति महामना का दृष्टिकोण

महामना राष्ट्रीय शिक्षा नीति, राष्ट्रीय पाठ्यक्रम, उच्च कोटि के शिक्षण संस्थाओं, शिक्षकों की सहायता से राष्ट्र का विकास करना चाहते थे। शिक्षा के विभिन्न कारकों पर उनका विचार इस प्रकार है।

शिक्षा का पाठ्यक्रम

महामना संकुचित, एकांगी, अरूचिपूर्ण, अव्यावहारिक, अप्रायोगिक पाठ्यक्रम को दोषपूर्ण मानते हैं। वे कहते हैं कि, ''संकुचित पाठ्यक्रम शिक्षा को उद्देश्यहीन बनाता है। अतः पाठ्यक्रम निर्माण करते समय वे समाज व विद्वानों की आवश्यकता, सहमति को महत्वपूर्ण मानते थे। वे चाहते थे कि विषय सामग्री अन्तर्विषयक, छात्रों की रूचि एवं उनकी अभिक्षमता के अनुकूल हो।''

महामना अपनी वंश परम्परा से शिक्षा के जिस मूल अभिध्यार्थो से प्रेरित थे, उसमें वेद, शास्त्र, संस्कृत का अध्ययन सर्वोपरि था। विश्वविद्यालयी शिक्षा के पाठ्यक्रम में उन्होंने समन्वयकारी नीति अपनाते हुये संस्कृत, धर्म, साहित्य, वेद, वेदांग, उपवेद, सूत्र, धर्मशास्त्र, पुराण आदि मूल विषयों की शिक्षण हेतु संस्कृत धर्म विज्ञान संकाय की स्थापना के साथ ही विज्ञान प्रौधोगिकी चिकित्सा विषयों को भी महत्व देते हुये मालवीय जी ने व्यापक पाठ्यक्रम का महत्व दिया।

उन्होंने औपनिवेशिक शिक्षा प्रणली पाठ्यक्रम का विरोध किया। प्राथमिक स्तर पर वे गाँधी जी की बेसिक शिक्षा नीति के पाठ्यक्रम से पूर्ण सहमत थे। परन्तु माध्यमिक व

उच्च शिक्षा स्तर पर में वे अर्थोपरक, व्यावसायिक, तकनीकी, वैज्ञानिक पाठ्यक्रम के पक्षधर थे।

उनके मतानुसार, ''विश्वविद्यालय विषयों की तुलना हम उन वृक्षों से कर सकते है, जिनकी जड़ प्रारम्भिक पाठशाला की गहराई तक पहुँचती है और वे अपने लिये शक्ति माध्यमिक स्तर के स्कूलों से प्राप्त करते हैं। जहाँ विद्यार्थियों के लिये शिल्प आदि कलाओं की शिक्षा का कोई प्रबन्ध न हो वहाँ प्रत्येक विद्यार्थी को बाध्य होकर एक ही प्रकार के विषय पढ़ने-पढ़ते है, जो उन्हें तुच्छ लिपकीय के पदों के अतिरिक्त अन्य कार्यों के लिये अनुपयुक्त बना देता हैं।'' (चतुवेर्दी खण्ड 2 - 1936) उनका यह कथन आज भी पारम्परिक पाठ्यक्रम चयन उपलब्धता के सन्दर्भ में प्रासंगिक है।

उनकी कल्पना थी कि उच्च शिक्षा का पाठ्यक्रम इस प्रकार का हो कि विश्वविद्यालय दैनिक उपयोग की वस्तुओं: साबुन, शैम्पू, स्याही, शीशे, चीनी मिट्टी के समान स्वयं बनायें। अत: काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में उनके द्वारा रसायन शास्त्र, नैतिक, औद्योगिक रसायन शास्त्र, ग्लास, सिरैमिक टैक्नोलॉजी विभाग खोले गये, जो बाद में कालेज ऑफ टेक्नॉलजी में परिणित हुआ।

प्रथम बार इलैक्टीकल, मैकेनिकल इन्जीनियरिंग पाठ्यक्रम चलाने वाली संस्था काशी हिन्दू विश्वविद्यालय थी। महामना ने विज्ञान से इण्टर पास बच्चे के लिये कारीगरी, डिग्री, डिप्लोमा पाठ्यक्रम चलवाया। उनके व्यापक पाठ्यक्रम की कल्पना का विस्तार, आज दो विशाल परिसर, तीन संस्थान, चार एडवांस स्टडी सेन्टर, चार इण्टर डिसीपिलनरी स्कूल, 16 संकाय, 140 विभिन्न विषयों के अध्ययन केन्द्र के रूप में पुष्पित एवं पल्लवित है। मालवीय जी ने प्रायोगिक प्रशिक्षण देने के लिये कानून विद्यालय, टीचर्स ट्रेनिंग कालेज, आयुर्वेद विद्यालय व इन्जीनियरिंग कोलेज की भी स्थापना की।

इस प्रकार उपरोक्त पाठ्यक्रम की सहायता से वे ऐसे नागरिक बनाना चाहते थे, ''जो सम्मान जनक साधनों से धनोपार्जन करने के साथ अवांछनीय आचरण के आकर्षण से बचें और संस्कृत वाङमय से संरक्षित उच्च सिद्धांतों से प्रेरित हो दृढ़ सयंमी व उज्जवल चरित्र वाले हो।''

शिक्षण पद्धति

शिक्षण विधि के सन्दर्भ में उनके विचार प्रयोजनवादी थे। क्रिया आधारित, व्यावहारिक, खोजपूर्ण, वैज्ञानिक शिक्षण विधि को वे विज्ञान सम्यक् विषयों के अध्ययन-अध्यापन

हेतु सहायक मानते थे। वही धार्मिक, साहित्य व भावानात्मक विषयों हेतु उच्च कोटि की व्याख्यान मालाओं को आयोजित करने के पक्ष धर थे। इसके अतिरिक्त छात्रों के संर्वागीण विकास हेतु विभिन्न पाठ्येत्तर क्रियाकलापों, साहित्य सभाओं, वाद-विवाद, नाटक-मण्डली, खेल समिति, राज्य परिषद आदि के पक्षधर थे।

महामना का मानना था कि छात्र अनुकरण द्वारा सीखते है। अतः वे शिक्षक व्यवहार को अनुकरणीय बनाकर शिक्षण विधि के रूप में प्रयोग करने पर बल देने की वकालत करते थे। वे मानते थे कि यदि शिक्षक वांछित उदाहरणों, दृष्टान्तों की सहायता से समझाये तो निश्चय ही छात्रों में बोध विकसित होगा।

शिक्षक

महामना ने शिक्षक को राष्ट्र का सच्चा एवं सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति माना। उन्होंने कहा कि शिक्षक के कारण ही विद्याप्रेम, समाज सेवा, राजभक्ति एवं मानव धर्म की स्थापना सम्भव है। इसलिये उनके दृष्टिकोण में मानव निर्माण का दायित्व शिक्षक पर है। आदर्शवादियों की भाँति महामना शिक्षक को धर्मपरायण, विषयवेत्ता, चरित्रवान, सत्यनुगामी, समाज के प्रतिनिधि, नेता, छात्रों की देख-रेख करने वाला निर्देशक व परामर्शक समझते थे (गुप्ता 1980)।

शिक्षकों की चयन प्रक्रिया करते समय महामना उनके विषय ज्ञान, आचरण, जीवन मूल्य को परखते थे। उनका मानना था कि शिक्षा में गुणवत्ता, पारदर्शिता व नैतिकता के उत्थान के लिये कुशल, सुयोग्य तथा अनुकरणीय अध्यापकों के चयन की आवश्यकता है।

उपरोक्त विचार आज भी शिक्षक चयन प्रक्रिया के सन्दर्भ में प्रासंगिक हैं।

विद्यार्थी

महामना ने विद्यार्थीयों को उपदेश देते हुए कहा कि-

''सत्येन, ब्रह्मचर्येण, व्यामयेनाथविद्यया।
देशभक्तत्यात्मत्यागेन, सम्मानर्तः सदाभव।।''

अर्थात् सत्य, ब्रहम्चर्य, व्यायाम, विद्या, देश भक्ति और आत्मत्याग द्वारा सदा सम्मान पाने योग्य बनो। वे छात्रों में कठोर आत्मअनुशासन, संयम, सादगी, नियम, विनम्रता, ब्रह्मचर्य पालन को देखने के अभिलाषी थे। वे छात्रों से कहते, ''चरित्र में अजेय बनो।'' अपने व्याख्यानों में छात्रों को समझाते, ''यह शरीर परमात्मा का मन्दिर है ईश्वर का सदैव अपने भीतर अनुभव करो इसे अपवित्र न होने दो।'' (वासुदेवशरण 1962)

महामना जी छात्रों को लक्ष्मण, अर्जुन, भीष्म, शंकर का उदाहरण देकर ब्रहम्चर्यव्रत पालन के लिये प्रेरित करते। वे छात्रों को कहते ''हृदय को पवित्र बनाओ, मन को निर्मल बनाओ, संसार में जहाँ जाओगे वहाँ मान के अधिकारी होगे।'' दीक्षांत समारोह (1929) में उन्होने कहा, '' सत्य कहो, सत्य का आचरण करो और सत्य को ही अपना मान समझो।'' विद्यार्थियों को आचरणीय आदेश के पालन हेतु वे ''आत्मन: प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत'' का उपदेश दिया करते। पुरातन छात्रों से महामना भेंट होने पर निम्नलिखित तीन प्रश्न पूछते।

1. सन्ध्या करते हो कि नही?
2. कितना दूध पीते हो?
3. तुम्हें कितनी सन्तान हैं?

उपरोक्त तीनों प्रश्नो आध्यात्मिक, अधिदैविक, अधिभौतिक, आयामों से पूर्ण हैं। इस प्रकार वे छात्रों में लौकिक पारलौकिक गुणों को समन्वय चाहते थे। वे छात्रों को आर्य कहकर सम्बोधित करते थे। गुरुदक्षिणा स्वरूप महामना छात्रों से कहते थे कि ''आप लोग सांसारिक कार्य करते हो, नित्य करो किन्तु प्रत्येक सप्ताह में डेढ़ घण्टा धर्म के लिये छोड़ दो।'' दीन छात्रों पर उनकी विशेष कृपा होती थी। उनके पास छात्रों को मदद करने के लिये कई सहायतार्थ कोष भी थे।

शिक्षा का माध्यम

शिक्षा के माध्यम के विषय में महामना कहते हैं कि, ''भारतीय विद्यार्थियों के मार्ग में अनेक बाधायें हैं। उनके मार्ग में आने वाली कठिनाइयों का कोई अन्त नहीं। सबसे बड़ी कठिनाई यहॉ शिक्षा व नौकरी का माध्यम विदेशी भाषा का होना है। 7 वर्ष की अवस्था से ही बालक अपने अध्ययन का बहुमूल्य समय विदेशी भाषा को सीखने व समझने में लगा देता है, जिससे वह अपनी भाषा से भी अनभिज्ञ रह जाता है और विदेशी भाषा का अध्ययन जो अप्राकृतिक है, उसमें उनका रटा हुआ ज्ञान भी अधूरा रह जाता है।'' अत: विश्व के अन्य देशो की भाँति वे हिन्दी को केवल शिक्षा का माध्यम ही नहीं वरन् उसे राष्ट्रीय भाषा बनाने के पक्षधर थे। औपरिनवेशिक भाषा माध्यम का विरोध करते हुये उन्होने कहा ''भारतवासियों को अपनी भाषा विदेशी अक्षरों से लिखने के लिये कहना ठीक वैसा है जैसा कि अंग्रेजों को उनकी भाषा देवनागिरी मे लिखने के लिये कहना।''

10 अक्टूबर 1910 को प्रथम हिन्दी साहित्य सम्मेलन (काशी) में अध्यक्षीय उद्बोधन में मालवीय जी ने कहा, ''मातृभाषा की सीखने में कौन लज्जा की बात है?

सच तो यह है कि जो पुरूष देश की भाषा को न जानता हो, वह क्या कभी गौरवान्वित हो सकता है।''

महामना का मानना था कि साहित्य व देश की उन्नति अपनी निज भाषा के द्वारा हो सकती है। वे मानते थे, ''मुठ्ठी भर लोग जिस भाषा को बोलने समझते है, प्रजा हित का कार्य उस भाषा में नहीं किया जा सकता।'' (सीताराम चतुर्वेदी महामना पं. मदन मोहन मालवीय खण्ड 2)

मालवीय जी हिन्दी को अन्य देशी भाषाओं की बड़ी बहन मानते थे। वे अंग्रेजी भाषा को सहायक व्यापारिक भाषा के रूप में महत्व देते थे। वे कहते थे कि इसे पढ़ने के लिये उत्साह तो होना चाहिए परन्तु इसको मुख्य स्थान कभी नहीं देना चाहिए। यद्यपि महामना ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में विदेशी सरकार की शर्तो के कारण शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी को स्वीकार किया लेकिन हिन्दी के उत्थान, प्रयोग, प्रगति के लिये 1922 में ही हिन्दी विभाग की स्थापना विश्वविद्यालय में की।

शिक्षक-शिक्षार्थी सम्बन्ध

महामना ऋषि, गुरूकुलीय शिक्षा व्यवस्था के पक्षधर थे। उनकी मनोकामना थी कि गंगा के किनारे प्रातः कालीन उगते सूर्य को दस हजार छात्र एक स्वर में वैदिक मंत्र से अभिनन्दित करे। विश्वविद्यालय को पूर्णतया आवासीय विश्वविद्यालय के रूप में स्थापित करने के पीछे उनकी मंशा थी कि, शिक्षक व छात्र पिता-पुत्र के भाव से रहे। उनके दृष्टिकोण में शिक्षक व शिक्षार्थी की प्रतिष्ठा, यश अन्योन्याश्रित होते हैं। वे शिक्षक-शिक्षार्थी सम्बन्धों को कठोपनिषद् श्लोक ''सहनाववतु सहनौभुनक्तु सहवीर्य करवाव है'' पर आधारित मानते थे। वे मानते थे कि ''शिक्षक व शिक्षार्थी दोनों एक दूसरे के नैतिक विकास में सहायक हो, सम्भावित पतन से एक दूसरे की रक्षा करें। वे अपने ज्ञानार्जन से उपलब्ध सिद्धियों का उपयोग मिलजुल कर करें। एक दूसरे के शौर्य से वृद्धि करें व आपस में ईर्ष्या नहीं करें।'' इस प्रकार महामना का उपरोक्त विचार आज की कक्षाओं के बढ़ते आकार, शिक्षकों के द्वारा छात्रों पर बलपूर्वक थोपे गये अनुशासन, व्यक्तिगत टूयशन प्रणाली, विद्यार्थी का गुरू के प्रति असम्मान आदि के सन्दर्भ में प्रांसगिक है।

स्त्री शिक्षा

महामना पुरुषों की शिक्षा की भाँति स्त्रियों की शिक्षा को महत्व देते थे वे मानते थे कि माता के समान कोई दूसरा शिक्षक नहीं होता है। स्त्री शिक्षा नामक निबंध में उन्होंने उद्धृत

किया, ''जब तक भारत में पुरूषों की शिक्षा की भाँति स्त्री शिक्षा का प्रचार-प्रसार नहीं होगा तब तक हमारी उन्नति सम्भव नहीं है।'' महामना अपने व्याख्यानों में सुलभा, सीता, गार्गी, सावित्री आदि विदुषी कन्याओं का उदाहरण देकर छात्राओं को उनके समान बनने का उपदेश देते थे। स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहित करते हुये महामना ने कहा ''स्त्रियॉ हमारे भावी राजनीतिकों, विद्वानों, तत्वज्ञानियों, व्यापारियों तथा कला कौशल के नेताओं की प्रथम शिक्षिका हैं। उनकी शिक्षा का प्रभाव भारत के भावी नागरिकों की शिक्षा पर विशेष रूप से पड़ेगा। अत: उन्हें अवश्य शिक्षित करना चाहिये।''

मालवीय जी स्त्रियों को प्रेरक शक्ति मानते थे, उनका कहना था, ''मनुष्य समाज का कल्याण अथवा अकल्याण, उच्च तथा नीच सब स्त्रियों के हाथ मे ही है। बाल्यावस्था से वृद्धावस्था तक पुरूष उनके हाथ की कठपुतली है। वे जिस प्रकार चाहे उनको चलायें।'' महामना ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रवेश द्वार के निकट महिला महाविद्यालय स्थापित किया। जहां छात्राओं के शारीरिक, मानसिक, भावानात्मक विकास हेतु कला, विज्ञान, साहित्य, संगीत सभी विषयों में शिक्षा दी जाती है। महामना बालिकाओं की आटोग्राफ बुक में लिखते थे, ''जो मैं पुत्री होय तो सीता सती समान'' इससे विदित होता है कि वे छात्राओं में उत्तम चरित्र के अभिलाषी थे (तिवारी 1962)। पाठ्यक्रम छात्राओं के विषयों में वे भोजन, कला, संगीत, गृहविषय, घरेलू अर्थशास्त्र आदि विषयों का अन्य विषयों के साथ समावेश चाहते थे (त्रिपाठी 1946)। उनके विचार वर्तमान में स्त्री चरित्र, पाठ्यक्रम, सम्मान के परिपेक्ष्य प्रासंगिक व उपादेय है।

साम्प्रदायिक एकता के पक्षधर

मार्च 1915 में केन्द्रीय विधान परिषद के सम्मुख विश्वविद्यालय विधेयक शिक्षा सदस्य के रूप में मालवीय जी ने कहा कि ''यह विश्वविद्यालय संकुचित सम्प्रदायवाद को बढ़ावा देने के स्थान पर उदारता तथा मानसिक स्वतंत्रता को विकसित करेगा। यह ऐसी धार्मिक भावना को विकसित करेगा, जो मनुष्य और मनुष्य के बीच भाईचारा उत्पन्न करेगा। धर्म के वास्तविक ज्ञान से विशाल-हृदयता उपजेगी, ईश्वर से प्रेम की भावना उपजने से आपसी प्रेम बढ़ेगा और घृणा की भावना कमजारे पड़ेगी।''

उनके समय में अंग्रेजों का यह प्रयत्न रहता कि हिन्दू-मुसलमानों के बीच दुर्भाव पैदा हो, जिससे वे आपस में संगठित न हों। मालवीय जी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करने का अथक प्रयास किया। यद्यपि हिन्दू, धर्म और संस्कृति के उत्थान एवं हिन्दू हितों की रक्षा के लिये सदैव सक्रिय रहते थे, परन्तु 1920 तक उनका हिन्दू

महासभा के आन्दोलन से कोई विशेष संबंध नहीं था, क्योकि प्रारम्भिक नेतृत्वकर्ता उग्र व कांग्रेस विरोधी थे। महामना ''हिन्दू-धर्म के मूल तत्वों का ज्ञान और अनुसरण हिन्दुओं को कराना कर्तव्य समझते थे, परंतु हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्यता को उभारना पाप समझते थे।''

1921-22 में मालाबार व मुल्तान के भीषण साम्प्रदायिक दंगा होने पर महामना ने रूदन करते हुये सात्प्रदायिकता से दूर रहकर अपने धर्म के साथ देश की उपासना करने का उपदेश दिया। उन्होंने कहा कि ''हिन्दुस्तान के हिन्दुओं और मुसलमनों का दूसरा रिश्ता इन्सानियत और तीसरा रिश्ता देशवासी होने का है।''

विश्वविद्यालय सृजन के समय उन्होंने कहा ''भारत केवल हिन्दू का देश नही है, यह मुसलमानों, ईसाई, पारसियों का भी देश है। यह देश तभी शक्तिमान बन सकता है और विकास कर सकता है, जब भारत में रहने वाले विभिन्न समुदायों के लोग पारस्परिक सौहार्द से रह सकें। यह मेरी आशा एवं प्रार्थना है कि प्रकाश और जीवन के यह केन्द्र काशी हिन्दू विश्वविद्यालय जो अस्तित्व में आ रहा है, ऐसे छात्रों का सृजन करे जो न केवल दुनिया के अन्य भागों के अच्छे छात्रों के समान योग्य होगें बल्कि वे छात्र आदर्श जीवन जीयेंगे, अपने देश से प्रेम रखेंगे और देश के प्रति स्वामीभक्त रहेंगे।'' उनका यह कथन आज भी प्रासंगिक है।

वेदों में महामना का तात्पर्य ''तन्मे मन शिवसंकल्पमस्तु'' है अर्थात् अच्छे मन का संकल्प महान शिवात्मक लोककल्याण के भाव से प्रेरित होता है। उनके बड़े मन में सभी धर्मो के प्रति आदर व सम्मान था। वे धार्मिक एकता के द्वारा राष्ट्रीयता के भाव को पोषित करना चाहते थे। वे कहते थे कि, ''भारत में अनेक जातियां है। यदि कोई जाति चाहे कि दूसरी जाति यहाँ से चली जाये तो ये उसकी भूल है। हिन्दू भी यहीं रहेंगे, मुसलमान भी यहीं रहेंगे, हमें एक दूसरे का भाई समझना चाहिये।'' यह उनका कथन आज भी प्रासंगिक है।

निष्कर्ष

इस प्रकार पण्डित मदन मोहन मालवीय जी भारतीय शिक्षा दर्शन के अनमोल रत्न व स्वंय में एक संस्था थे। उन्होने शिक्षा व समाज के सभी क्षेत्रों को ध्यान में रखकर अपने चिन्तन, विचार का व्यावहारिक प्रयोग किया तथा इस प्रकार की शैक्षिक संकल्पना स्थापित की जिससे मानवों में सहजीविता, सौहार्द बना रहे। सभी उच्च शिक्षित एवं सभी

विधाओं में कौशलयुक्त होकर अपनी आजिविका प्राप्त करें तथा अपना और अपने देश के साथ विश्व के बहुआयामी, बहुमुखी विकास में सार्थक योगदान देते हुए सम्मान प्राप्त करें। आज की वर्तमान भारतीय एवं वैश्विक शैक्षिक परिस्थिति में उनका शैक्षिक दर्शन सर्वथा उपयोगी, प्रमाणिक एवं प्रासंगिक है।

सन्दर्भ

मालवीय गिरिधर (2007), मदन मोहन मालवीय एक जीवन परिचय, 2007 वाराणसी पृ. 26 से 28

तिवारी, उमेश दत्त (1988), ''भारत भूषण पं. मदन मोहन मालवीय,'' बी.एच.यू.

परमानन्द (1962), मदन मोहन मालवीयः एक हिस्टोरिकल बायग्राफी, केन्द्रीय ग्रन्थालय, बी. एच.यू., पृ. 64

लाल, मुकुट बिहारी (1978), ''महामना मदन मोहन मालवीयः जीवन और नेतृत्व'' मालवीय अध्ययन संस्थान, बी.एच.यू., पृ. 38

वही पृ. 42

वही पृ. 282

वर्मा वी.पी., (1998) ''आधुनिक भारतीय राजनीति चिन्तन,'' लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृ. 378

वर्मा ईश्वर प्रसाद (1967), ''मालवीय जी के सपनों का भारत,'' किताब घर, गाँधी नगर, दिल्ली, पृ. 177

वर्मा डॉ. विद्युत (2001), महामना के चिन्तन आलोक, महामना मालवीय फाउण्डेशन, लखनऊ, पृ. 17

अग्रवाल वासुदेव शरण (1962), मालवीय जी के लेख और भाषण, (भाग एक धार्मिक) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी

प्रज्ञा अंक 6 वर्ष 1961 पृ. 1–2 व प्रज्ञा स्वर्ण जयंती विशेषांक 2008 – 2009 पृ. 125

भट्ट भरत राय (1990)आलोक पुरूष पं. मदन मोहन मालवीय, राजेश प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. 50,51

टण्डन दास पुरूषोत्तम महामना मालवीय बर्थ सेण्टेनरी कौनिमैरेशन वाल्यूम।

पाण्डेय विश्वनाथ (2014)महामना पं. मदन मोहन मालवीय जी का विद्यार्थियों के लिये सन्देश पृ. 19

रिपोट, ट्वेटी फोर्थ इण्डियन नेशनल कांग्रेस 1909, पृष्ठ 44

पद्मकान्त मालवीयः मालवीय जी जीवन झलकियॉ पृ. 61

त्रिपाठी रामनरेशः मालवीय जी के साथ तीस दिन पृ. 33

गनेश (1918) दी आनरे बल पंडित मदन मोहन मालवीयः लाइफ एण्ड स्पीचेज, सकेण्ड एडिशन पृ. 6–7

दर.एस.एल. एवं सोमस्कदन (2007) ''हिस्ट्री ऑफ द बनारस हिन्दू यूर्निवसिटी'' काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी तारा प्रिटिंग वर्क्स व्यास 1987 पृ. 61

बी.एच.यू. बेवसाइटः www.bhu.ac.in दिनांक 01/09/2016

मालवीय जी के लेख, पृ. 4

त्रिपाठी डा. सत्येन्द्र, द्विवेदी, डॉ. कृष्णदत्त भारतीय (2006), राष्ट्रवाद विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी,

मालवीय, पं. मदन मोहन, दीक्षान्त भाषण पृ. 60

अवधेश प्रधान, 'महामना के विचार' एक चयन पृ. 293 कावरा प्रिंटिग प्रेस वाराणसी

सीता राम चतुर्वेदी, महामना पं. महामना मालवीय खण्ड 2 पृ. 79

वही पृ. 101

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 25, अंक 3, दिसंबर 2018

पुस्तक समीक्षा

श्री रिवर्स एंड ए ट्री

शालिनी तिवारी*

पुस्तक का नाम- ***श्री रिवर्स एंड ए ट्री,*** लेखिका- ***नीलम सरण गौड़***
प्रकाशक- ***रूपा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ 373, मूल्य- 295 रुपये***

इस अकादमिक कार्य में लेखक ने उपाख्यानों और ऐतिहासिकता के माध्यम से इलाहाबाद विश्वविद्यालय (ए.यू.) का समग्र चित्रण किया है। पुस्तक ब्रिटिश युग का एक दिलचस्प विवरण देती है, पता लगाती है कि इलाहाबाद विश्वविद्यालय एक वास्तविकता कैसे बन गया और सबसे पहले कि उसकी आवश्यकता क्यों थी, क्योंकि पहले से ही चार विश्वविद्यालय थे, जो कलकत्ता, बॉम्बे, मद्रास तीन प्रदेश नगरों में और चौथा लाहौर (वर्तमान पाकिस्तान) में था। अंग्रेज़ों द्वारा स्थापित इन विश्वविद्यालयों का उद्देश्य विश्व-नगरीय ज्ञान रखने वाले स्नातकों का उत्पादन करना था, जो ब्रिटिश तौर-तरीक़ों में पारंगत हों और साम्राज्यवादी सरकार में ज़रूरी मानव संसाधानों की बढ़ती आवश्यकता को पूरा कर सकें।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय को निगमन अधिनियम (इनकारपोरेशन एक्ट) या अधिनियम XVIII के माध्यम से स्थापित किया गया था, जिसे 23 सितंबर 1887 को पारित किया गया था। इसमें चर्चा के दो प्रमुख मुद्दे थे। पहला मुद्दा विश्वविद्यालय की स्थापना हेतु स्थान के लिए था; इलाहाबाद ही क्यों और कोई अन्य नगर क्यों नहीं, जैसे लखनऊ, बनारस (वाराणसी) या आगरा? आखिर इलाहाबाद का चुनाव किया गया, क्योंकि यह उत्तर-पश्चिम प्रांत की नई राजधानी थी। यहाँ उच्च-न्यायालय और कई अन्य उच्च-स्तरीय संस्थानों के संचालन-केंद्र भी थे। इसके अलावा शहर में म्योर केंद्रीय महाविद्यालय था, जो इलाहाबाद विश्वविद्यालय के लिए एक स्वत:

*पी-एच.डी. स्कॉलर, नीपा, नई दिल्ली

परिस्थिति बन गया था। चर्चा का दूसरा मुद्दा, लागू होने वाली शिक्षा की प्रकृति के बारे में था; यूरोपीय शैली के प्रतिदर्श और आंग्ल-प्राच्य प्रतिदर्श के बीच झगड़ा चल रहा था लेकिन इलाहाबाद विश्वविद्यालय विश्वनगरीय संस्करण की ओर चला गया, जबकि उसने महत्त्वपूर्ण क्षेत्रीय और शास्त्रीय अध्ययन के लिए अपने स्वयं के समर्पित विभागों को बनाए रखा।

पुस्तक का नाम यानी *थ्री रिवर्स एंड ए ट्री* क्या संकेत करता है? इसमें इलाहाबाद शहर का वर्णन है; गंगा और यमुना क्रमशः भारत की 'नियति की नदी' और 'रोमांस की नदी' के रूप में (आर.एन. देब द्वारा संदर्भित और लेखक द्वारा उद्धृत), और तीसरी नदी सरस्वती (जो कि विद्या और रचनात्मक प्रेरणा की हिन्दू देवी मानी जाती हैं) के साथ उनका अनुमानित संगम है। इस संधि-स्थल पर एक पौराणिक वृक्ष यानी अक्षय-वट या बरगद का पेड़ मौजूद है। बरगद का वृक्ष इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रतीक-चिह्न में भी है और उस पर लैटिन में 'क्वाट रमी टॉट आर्बोरेस' लिखा हुआ है, जिसका अर्थ है 'जितनी शाखाएँ उतने पेड़'।

भारतीय विश्वविद्यालयों के लिए दो अधिनियम (विश्वविद्यालय अधिनियम, 1904 और विश्वविद्यालय अधिनियम, 1905) इलाहाबाद विश्वविद्यालय के लिए राज्य-सभा और अभिषद के क्षेत्रीय पुनर्गठन और सुधार के रूप में सामने आए, जहाँ यूरोपीय सदस्यों की संख्या भारतीय लोगों से अधिक थी। इसके अलावा, विद्यालय (माध्यमिक या एफ़.ए कक्षाएँ) विश्वविद्यालय से अलग हो गए, जिससे फ़ीस के नुकसान के कारण राजस्व में कमी आई, इसलिए विश्वविद्यालय अनुदान के लिए पहले की तुलना में सरकार पर अधिक निर्भर हो गए। 1921 का इलाहाबाद विश्वविद्यालय अधिनियम विश्वविद्यालय के पुनर्गठन के लिए पारित किया गया था, जो आधिकारिक तौर पर 1922 में शुरू हुआ और 1927 तक विश्वविद्यालय सुचारु ढंग से चलने लगा। इलाहाबाद भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के संदर्भ में एक रणनीतिक स्थान था, क्योंकि इसमें अखिल भारतीय कांग्रेस समिति का मुख्यालय था। राजनैतिक नेतृत्त्व के संदर्भ में एक उच्च-स्तरीय शहर होने के नाते और बौद्धिकों, जो सक्रिय थे और जिनमें अवज्ञा की संस्कृति थी, ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में इलाहाबाद विश्वविद्यालय की भूमिका को और अधिक प्रमुख बना दिया। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पास जानकारी और जोश से भरे युवाओं का संसाधन था, जिसने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को आगे ले जाने और इसे आकार देने में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय का स्वर्णिम काल 1927 से 1957 तक माना जाता है। इस अवधि के दौरान इलाहाबाद विश्वविद्यालय की उन्नति रचनात्मक और ऊर्जापूर्ण थी। इन 30 वर्षों ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय का एक दृढ़ चरित्र बनाया और ये ऐसे वर्ष थे जब यह देश के इतिहास में हो रहे रूपान्तरण का हिस्सा भी बन गया। इस अवधि के दौरान ए.यू. में विभिन्न विषयों की शुरुआत हुई, जैसे, क़ानून, हिन्दी साहित्य, उर्दू, अरबी, फ़ारसी, अंग्रेज़ी साहित्य, भूगोल, इतिहास, राजनीति विज्ञान, अर्थशास्त्र, वाणिज्य, व्यवसाय प्रशासन, भौतिकी, रसायन विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, प्राणी शास्त्र, गणित, मनोविज्ञान, रक्षा अध्ययन आदि। ये सभी विषय उस समय के भारत में उपलब्ध उत्कृष्ट विद्वानों/शिक्षकों द्वारा पढ़ाए जा रहे थे।

लेखक ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय के परिसर के व्यक्तित्त्वों के लिए एक अध्याय समर्पित किया है, अर्थात जिन्होंने विभिन्न पदों पर परिसर में काम किया और इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अकादमिक और सांस्कृतिक बोध को आकार दिया। यह उनकी उपस्थिति, उनके अकादमिक और शोध कार्यों, छात्रों तक उनकी पहुँच आदि का एक विस्तृत दस्तावेज़ है। एक अध्याय में लेखक ने विभिन्न व्यक्तित्त्वों और इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संबंधित विभिन्न व्यक्तियों, जो कि शैक्षणिक, प्रशासनिक और नेतृत्त्व के पदों पर थे, के चित्र दिए हैं; जैसे हरिवंश राय बच्चन, मेघनाथ साहा, रघुपति सहाय 'फ़िराक़ गोरखपुरी', गंगानाथ झा, अमरनाथ झा, सर सुंदर लाल, आर.डी. रानाडे, डॉ. ईश्वरी प्रसाद, इक़बाल नारायण गुर्टू, डॉ. आर.पी. त्रिपाठी, प्रो. नील रतन धार, खेत्रेश चट्टोपाध्याय, सतीश चंद्र देब आदि। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण छात्र विभिन्न क्षेत्रों जैसे नौकरशाही, बेंच बार, राजनीति, मीडिया, विज्ञान और शब्दों की दुनिया में प्रतिष्ठित पदों पर गए। उल्लेखनीय पुराछात्रों में मदन मोहन मालवीय, गोविंद वल्लभ पंत, हरीश चंद्र, रंगनाथ मिश्रा, वी. एन. खरे, जे.एस. वर्मा, शांति भूषण, मुरली मनोहर जोशी, दौलत सिंह कोठारी, भगवती चरण वर्मा, धार्मवीर भारती आदि हैं।

1960 के दशक तक, इलाहाबाद विश्वविद्यालय धीरे-धीरे विशिष्ट शिक्षण संस्थान से अनुसंधान संस्थान में परिवर्तित हुआ। आने वाले वर्षों में इसका भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद (आईसीसीआर), विज्ञान और प्रौद्योगिकी परिषद, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद (सीएसआईआर), राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (रा.शै.अ.प्र.प.)

और राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला के साथ अभिनव संबंध बना। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अकादमिक और शोध उद्देश्य के लिए विदेशी विश्वविद्यालयों के साथ कई विनिमय कार्यक्रम भी थे। नए शोध उन्मुख विभाग खुले; छात्रों और शिक्षकों के लिए सीटों की संख्या में वृद्धि हुई।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय परिसर में विरोध प्रदर्शन के बारे में बात करते हुए पुस्तक वर्णन करती है कि 1950 से 1970 के दशक के प्रारंभ तक छात्रों द्वारा विभिन्न रूपों में विरोध प्रदर्शन किए जाते थे यानी इसमें गांधीवादी उपवास के तरीक़े और कभी-कभी तोड़-फोड़ भी शामिल थी। हालाँकि एक विश्वविद्यालय अध्यादेश है, जो इस बारे में बात करता है कि जो भी भूख हड़ताल में शामिल होगा, उसे विश्वविद्यालय से निष्कासित कर दिया जाएगा, लेकिन गांधीवादी मूल्यों के लोकाचार के कारण किसी भी छात्र पर आरोप नहीं लगाया गया और भूख हड़ताल में शामिल होने के लिए किसी को निष्कासित नहीं किया गया। 1960 के दशक में जो मुद्दे विश्वविद्यालय परिसर के भीतर संघर्ष का कारण बने, वे भाषा से संबंधित थे।

1970 के दशक का ध्यान आपातकाल पर था, जिसके लिए भारत के लोग 26 जून 1975 को जागे थे। परिसर में जो विमर्श हुआ वह स्वतंत्रता और लोकतंत्र से संबंधित था। लेकिन, मौलिक अधिकारों के निलंबन के कारण निश्चित रूप से परिसर में विरोध के संबंध में अराजकता कम थी। इलाहाबाद भी जयप्रकाश नारायण आंदोलन (जे.पी. आंदोलन) के दौरान एक प्रमुख केंद्र था, क्योंकि यह शहर हमेशा से ही तर्कवादी रहा है, और इलाहाबाद विश्वविद्यालय के लोग शुरुआत से ही असंतोषियों के बीच रहे हैं। देश में आपातकाल को हटाने के साथ एक नई सरकार आई जो जे.पी. आंदोलन से निकली थी, लेकिन ए.यू. के परिसर की बात करें तो अराजक प्रकृति फिर से प्रारंभ हो गई और अनुशासन के महीने (आपातकाल के दौरान) व्यर्थ हो गए। हालाँकि, परिसर छात्रों की अशांति का एक स्थान रह चुका था, लेकिन आपातकाल के बाद परिसर में कानून और व्यवस्था के टूटने का एक नया स्तर देखा जा सकता था, विशेष रूप से 1979-81 के दो वर्ष सर्वाधिक हिंसक थे।

1990 में मण्डल आयोग की रिपोर्ट लागू होने के बाद (जिसने सरकारी नौकरियों में अन्य पिछड़ी जाति समूहों (ओबीसी) को आरक्षण दिया), इसने सामाजिक न्याय को अभिव्यक्ति देते हुए, ओबीसी के लिए अवसर की एक खिड़की खोल दी। जैसा कि यह भारत के इतिहास में एक नया विकास था, ए.यू. परिसर जो कि विभिन्न उच्च जाति

के शिक्षकों (इस समय तक अधिकतर विभागों के शिक्षक उच्च जतियों के थे) के मध्य झगड़े देख रहा था, वह थोड़ा कम हो गया, क्योंकि उनके मन में यह भावना थी कि ओबीसी के आरक्षण के संदर्भ में एक नए ख़तरे का सामना करने के लिए उन्हें एक साथ आने की ज़रूरत है। परिसर की तीखी जाति की राजनीति में यह एक अभिवृत्तिक बदलाव था।

विश्वविद्यालय प्रशासन की भूमिका पर ध्यान केंद्रित करते हुए, लेखक का कहना है कि प्रशासन ने भीड़तंत्र, परीक्षाओं के दौरान नकल, पेपर लीक, लिपिकों द्वारा पिछले दरवाज़े से अंकतालिका में अंक जुटाना, देर से परिणाम की घोषणा और अन्य प्रकार की जो दुर्भावनाएँ चल रही थीं, को नज़रअंदाज़ किया। इन सबने विशेषकर शिक्षकों को हतोत्साहित किया और एक आम विचार बनाया कि यह डिग्री की साख बदनाम होने के स्तर तक ए.यू. की छवि को ख़राब कर रहा है, जिसे फिर से प्राप्त नहीं किया जा सकता। शिक्षकों ने परीक्षा और मूल्यांकन प्रक्रिया में अनियमितताओं, भ्रष्टाचार पर भीतरी सहमति, परिसर में छात्रों की अशांति और विश्वविद्यालय के सामान्य मूल्यों पर दुष्प्रभाव के बारे में अपने मुद्दों और चिंताओं को दर्ज किया था। उन्होंने यह चेतावनी भी दी थी कि ये सब चीज़ें विश्वविद्यालय की छवि को बिगाड़ रही हैं, इन्हें नियंत्रित किया जाना आवश्यक है, जिसे निश्चित रूप से विश्वविद्यालय प्रशासन द्वारा ध्यान में नहीं लिया गया था।

प्रशासन के केंद्रीकरण को परिभाषित करते हुए लेखक ने कहा है कि अकादमिक समुदाय की निर्णय लेने की शक्तियाँ ए.यू. की शासन-प्रणाली में कम प्रासंगिक थीं, क्योंकि अधिकांश नियुक्तियाँ सरकार द्वारा समर्थित थीं; जैसे रजिस्ट्रार, डेप्युटी रजिस्ट्रार और वित्त अधिकारी।

यह पुस्तक इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संबंधित उपलब्ध साहित्य को सम्मिलित करती है। इसमें ए.यू. की उत्पत्ति, एक विश्वविद्यालय के रूप में हासिल की गई उन्नति, इसके द्वारा समाज के विभिन्न वर्गों को दिए गए विभिन्न व्यक्तित्त्वों, जिन्होंने विभिन्न क्षमताओं से सेवा की है, साथ ही इन वर्षों में इसके उतार-चढ़ाव को दर्शाया गया है। इसमें भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में और स्वतन्त्रता के बाद भारत के निर्माण में निभाई गई इसकी भूमिका, जिससे राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तर के इतिहास को आकार मिलता है, का भी विस्तार से वर्णन किया है।

लेखकों के लिए

परिप्रेक्ष्य राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली से अप्रैल, अगस्त और दिसंबर में प्रकाशित की जाती है।

यह पत्रिका समाजवैज्ञानिकों और शैक्षिक योजना, प्रशासन और प्रबंध से जुड़े कार्मिकों तथा शोधकर्त्ताओं के शैक्षिक शोध और अनुभवों के आदान-प्रदान के लिए एक मंच प्रदान करती है।

इस पत्रिका में निम्नांकित स्तंभ हैं : 1. अनुसंधान लेख; 2. अनुसंधान टिप्पणी/संवाद; 3. अनुसंधान रिपोर्ट सार; 4. चिंतक और चिंतन; 5. साक्षात्कार; 6. समीक्षा लेख; 7. पुस्तक समीक्षाएं।

इस पत्रिका के लिए हिंदी/अंग्रेजी में लिखे अप्रकाशित मूल लेख आमंत्रित हैं। मूल हिंदी में लिखे नीतिगत और अनुभवाश्रित लेखों को प्राथमिकता दी जाएगी। लेखकों से अनुरोध है कि लेख की दो टंकित प्रतियां भेजें। पांडुलिपि फुलस्केप पेपर पर डबल स्पेस में एक ओर टंकित होनी चाहिए। लेख का सारसंक्षेप 150 शब्दों में अवश्य भेजें। लेख की साफ्ट कापी भी भेज सकते हैं। कृपया अलग पृष्ठ पर अपना संक्षिप्त परिचय अवश्य दें। पांडुलिपि में संदर्भ, टिप्पणी, संदर्भ ग्रंथ आदि का उल्लेख निम्नांकित रूप में दें :

* बिना टिप्पणी के सामान्य संदर्भ छोटे कोष्ठक में दें, जैसे- (नायक, 1972, पृ. 23-25)
* नायक, जे.पी. (1972) एजुकेशन कमीशन एण्ड आफ्टर, नई दिल्ली : एलायड
* मजूमदार, तपस (1987) ''द रोल ऑफ फायनेंस कमीशन'' जर्नल आफ एजुकेशनल प्लानिंग एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, 1(2 & 4), जुलाई-अक्तूबर, पृ. 1-11
* पंचमुखी, पी.आर. (1982) ''एजुकेशनल फायनेंसेज इन द फेडरल फ्रेमवर्क'' शिक्षा के लिए अतिरिक्त संसाधन जुटाने के उद्देश्य से गतिविधियां विषय पर नीपा, नई दिल्ली में आयोजित संगोष्ठी (मिमियोग्राफ)
* रेफ, हंस (1986), ''पर्सपेक्टिव प्लानिंग इन एजुकेशन : एन इंटरनेशनल व्यू'', मुनिस रज़ा (सं.), एजुकेशनल प्लानिंग : ए लांग टर्म पर्सपेक्टिव, नई दिल्ली, कांसेप्ट-नीपा में संकलित, पृ. 65-91
* टिप्पणी और संदर्भ सूची लेख के अंत में संख्याक्रम और हिंदी वर्णमाला क्रम में दें।

संपादकीय पूछताछ और अन्य जानकारी के लिए संपर्क करें :

संपादक *परिप्रेक्ष्य,* राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन संस्थान (नीपा)
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110016. ई-मेल: priyam.manisha@gmail.com

ISSN 0972-7515

आगामी अंक

वर्ष 26, अंक 1, अप्रैल-अगस्त 2019

शिक्षा एवं सामाजिक न्याय

परिप्रेक्ष्य का यह विशेषांक भारतीय सामाजिक परिवेश तथा शैक्षणिक कार्यकलापों को एक विस्तृत नीतिगत तथा दार्शनिक चिंतन के साथ जोड़ता है। यह ज्ञात है कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था में गरीबी और सामाजिक असमानता निहित है, किन्तु शिक्षा एवं शैक्षणिक नीति इन विषमताओं को दूर करने का प्रयत्न करती है। यह विशेषांक सामाजिक न्याय एवं शिक्षा पर उत्कृष्ट चिंतन का माध्यम है।